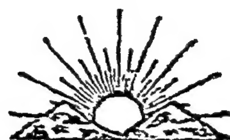
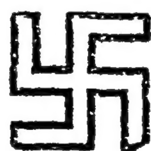
❋ दिवाकर-रश्मियाँ ❋



संग्राहक :—

श्री अशोक मुनिजी

साहित्य रत्न" "जैन सिद्धान्त विशारद'



प्रकाशक :—

श्री दिवाकर दि. ज्योति कार्यालय
मेवाड़ी बाजार, ब्यावर (राज.)

२ श्री आर. बी. राठोड़ वकील
रविवार पेठ नासिक सिटी



संग्राहक:-
श्री अशोक मुनिजी म०
'साहित्य रत्न' 'जैन सिद्धांत विशारद'

सम्पादक:-
श्री कन्हैयालालजी लोढ़ा

प्रकाशक:-
श्री दिवाकर दि० ज्योति कार्यालय
मेवाड़ी बाजार, ब्यावर (राज.)

२ श्री आर० बी० राठोड़ वकील
रविवार पेठ नासिक सिटी

मुद्रक:-
पं० बसंतीलाल नलवाया
जैनोदय प्रेस, रतलाम

प्रथमावृति—२०००
समय—दीपावली २४९२
मूल्य—२) रुपया

"निवेदन"



प्रस्तुत ग्रन्थ पाठकों के समक्ष उपस्थित करते हुए अत्यन्त प्रसन्नता होती है। इस ग्रन्थ में प्रातः स्मरणीय गुरुदेव श्री चौथमलजी म. सा. के प्रवचनों में उपलब्ध सूक्तियों का संकलन है। जनता गुरुदेव से "जैन दिवाकर" नाम से ही अधिक परिचित है। वस्तुतः दिवाकरजी दिवाकर ही थे। दिवाकर के दर्शन से जैसे कमल खिल उठता है वैसे ही आपके दर्शन व प्रवचन श्रवण से हृदय कमल खिल जाता था। दिवाकर की प्रभा से अंधकार दूर भागता है वैसे ही आपके प्रवचनों के प्रभाव से अज्ञान का अंधकार दूर भागता था तथा जनता में स्वतः ही दुर्व्यसनों, दुर्गुणो, व कुरुढियों के त्याग की प्रेरणा जागृत होती थी। आपके द्वारा कराये गये सामूहिक त्याग के स्मृति-चिन्ह अगते के रूप में आज भी अनेक नगरों में विद्यमान है।

आपके व्यक्तित्व से आचार की उत्कृष्ठता, विचार की विराट्ता, स्वभाव की सरलता, वाणी की मधुरता झलकती थी। हिन्दू, मुसलमान, बौद्ध, ईसाई आदि किसी भी धर्म का अनुयायी आपके संपर्क में आया उसने आपमें अलौकिक आभा को पाया और अपने को उस आभा की प्रभा से प्रभावित

पाया। आपकी वाणी से ज्ञानामृत झरता था। नेत्रों से करुणा की शीतल सुखद ज्योति धारा बहती थी। प्रवचनों मे विश्व-कल्याण की सरिता प्रवाहित होती थी। आपकी छाया में आने वाला व्यक्ति ताप व संताप की गर्मी को शांत करने वाली शीतलता का अनुभव करता था। आप धर्म के दूत तो थे ही। साथ ही कलम के धनी, मानव-स्वभाव के चितेरे, दया के अवतार, अधमों के उद्धारक एवं साधुता की साक्षात् मूर्त्ति थे।

आपका व्यक्तित्व जितना प्रभावक था वक्तृत्व भी उतना हो प्रभावक था। आपकी वक्तृत्व शैली सरल, सरस व मर्म स्पर्शी थी, श्रोताओं को चुम्बक के समान आकृष्ट करती थो। आप जीवन के हर पक्ष की इस ढंग से व्याख्या करते थे कि श्रोताओं को ऐसा अनुभव होता था कि मानों उन्हीं के मन का समाधान किया जा रहा है।

आपके प्रवचनों में गभीर सिद्धान्तों को भी अत्यत सरल भाषा व सुगम शैली से समझाया गया है। प्रत्येक प्रवचन प्रभावकारक, प्रेरणा प्रदायक एवं रोचक है तथा अत.करण को छूता हुआ चलता है। प्रवचन इतने मधुर, सरस व हृदय स्पर्शी है कि एक बार पढ़ना प्रारंभ कर देने पर तब तक उन्हे छोड़ने का मन नहीं होता है जब तक कि वे पूरे पढ नही लिये जाते है। पढ़ते समय पाठक आनन्द मे निमग्न हो जाते हैं।

आपके प्रवचनों मे जीवन की दु.खद-दशाओं एवं उलझी हुई गुत्थियो से मुक्ति पाने का पथ-प्रदर्शन बड़ी ही सरल

युक्तियों से किया गया है। उन युक्तियों का सार प्रवचनों के प्रवाह में यत्र तत्र सूत्र रूप में मिलता है। उन्हीं सूत्रों व सूक्तियों का सकलन कर उन्हे प्रस्तुत ग्रन्थ का रूप दिया गया है। इन सूक्तियों में जीवन के व्यापक अनुभवों का सार, नीति वाक्यों का निचोड़, ज्ञान का नवनीत सन्निहित है। ये सूक्तियाँ मार्ग-दर्शन तो करती ही है साथ ही निराशा और विपत्ति के क्षण मे स्फुरणा, प्रेरणा एवं प्रबल बल भी देती है। जीवन की जटिल से जटिल समस्याओं को बात की बात में सुलझा देने की विशेषता भी इन सूक्तियों मे निहित है। सद्ग्रन्थों के सैकड़ों पृष्ठों को पढ़ने और सदुपदेशक के घंटों व्याख्यान श्रवण का जितना प्रभाव पड़ता है उससे भी अधिक प्रभाव डालने मे समर्थ गुरुदेव की सूक्तियां है। इनका प्रभाव सीधा हृदय पर पड़ता है जो तड़ित्-तरंग की भांति सारे तन व मन को झंकृत व प्रफुल्लित कर देती है। ये सूक्तियां वे बहुमूल्य मणियाँ है, जिन्हें हृदय में संजोये रखने से अवसर आने पर अमूल्य निधि का काम देती है। ये विकारो के विनाश करने मे अमोघ औषधि के समान है। ये सूक्तियां वे सीढ़ियाँ है जिन पर चढ़ कर स्वर्ग व अपवर्ग मे पहुँचा जा सकता है। वस्तुतः ये सूक्तियां जीवन-व्यवहार मे पग-पग और पल-पल पर पथ-प्रदर्शन का काम देने वाली है, पतन के गर्त्त मे गिरने से बचाने वाली है, उन्नति के शिखर पर पहुॅचाने वाली है, आशा, उत्साह व प्रेरणा का सचार करने वाली है।

प्रस्तुत संकलन मे सूक्तियो का विषयवार वर्गीकरण किया गया है तथा इन्हे इस प्रकार क्रम-बद्ध किया गया है कि

पाठकों को प्रवाहमान निवंध के पढ़ने जैसी रसानुभूति होती रहे ।

प्रस्तुत ग्रंथ की सूक्तियों का संकलन अभी तक प्रकाशित 'दिवाकर दिव्य ज्योतियों के बीस भागों में से किया गया है । इन सब भागों का प्रकाशन 'दिवाकर दिव्य ज्योति कार्यालय' व्यावर से हुआ है । इन प्रवचन पुस्तकों का सपादन समाज के मान्य मूर्धन्य विद्वान श्री शोभाचन्द्रजी भारिल्ल ने वडा ही सुन्दर किया है । प्रस्तुत संकलन का संपादन व वर्गीकरण समाज के उदीयमान लेखक, गभीर चितक, व अनेक विषयों के विद्वान श्री कन्हैयालालजी लोढ़ाने किया है । मैंने तो सकलन सेवा ही की है । मुझे आशा है कि जीवन-निर्माण मे यह ग्रंथ अत्यंत उपयोगी व वहुमूल्य प्रमाणित होगा । यह सकलन कैसा वन पड़ा है इसका निर्णय तो पाठक स्वयं कर सकेंगे ।

कानपुर
जन्माष्टमी

अकिंचन
अशोकमुनि जैन



दिवाकर-रश्मियां



-: दान :-

(१)

किसी वस्तु पर से अपनी ममता उतार कर स्व-पर-कल्याण के लिए उसे अर्पित कर देना दान कहलाता है। दान-धर्म की महिमा बड़ी विशाल है।

(२)

जो पहले बोया उसे अभी खा रहे हो और जो अब बोओगे उसे आगे खाओगे। जो बोएगा ही नहीं, वह क्या खाएगा ? अतएव दान न देते होओ तो अब देना आरंभ करो, और यदि देते हो तो देते समय ऐहसान न जतलाओ। यह मत सोचो कि मैं दान देकर दानपात्र पर ऐहसान कर रहा हूँ।

बल्कि यह विचार करो कि यह दान को अंगीकार करने वाला मुझे पुण्य का अवसर दे रहा है। तुम स्वयं उसके प्रति कृतज्ञ बनो। ऐसी भावना करने से तुम्हारे दान का फल कई गुणा प्रशस्त बन जाएगा।

(३)

अरे, जो सम्पत्ति आज तुझे मिली है, वह एक न एक दिन तो चली जाने को ही है। सदा तेरे पास नही रहेगी। फिर उसे दान देकर भविष्य मे पाने का अधिकारी क्यों नहीं बनता ? परलोक मे पूँजी को साथ ले जाने का एक ही तरीका है और वह यही कि तू उदारभाव से, प्रेमपूर्वक दान दिये जा !

(४)

वर्ण माला में ३२ अक्षर हैं। उनमें से एक अक्षर नरक का विरोधी है और दूसरा मोक्ष का विरोधी है। वह दो वर्ण है–"द" और "ल"। दान दो, वस्त्र दो, मकान दो और अभय दो.... ...... यह सब नरक के विरोधी है और "लाओ" "लाओ" मोक्ष का विरोधी है अर्थात् धन लाओ, वस्त्र लाओ, स्त्री लाओ, इस 'लाओ' की लालसा से मोक्ष का विरोधी होता है।

(५)

भाइयो ! यह बात समझने योग्य है कि दान देना उधार देना है और पाप करना कर्ज लेना है। इन दोनों का ही बदला मिलता है। जितना–जितना दान--पुण्य करोगे, उतना

ही उतना पाओगे और जितना-जितना पाप करोगे, उतना ही उतना चुकाना पड़ेगा ।

(६)

दान में ममत्व के त्याग की एवं परोपकार की भावना ही मुख्य रूप से होनी चाहिए । कीर्ति का कामना से प्रेरित होकर, वाह-वाह लूटने के लिए, जो दान दिया जाता है, वह दान अशुद्ध हो जाता है । जो अपने दान का अधिक से अधिक विज्ञापन चाहते है; अखबारो मे, मोटे-मोटे टाइपो मे अपना नाम छपा देख कर फूले नही समाते ! उनका इस प्रकार कीर्ति और प्रतिष्ठा के लिये दिया हुआ दान वैसा फल प्रदान नही करता जैसे कि करना चाहिए ।

(७)

सच्चा देना तो ममता का त्याग करना है । ममता का त्याग कर दिया तो फिर उसका बदला पाने की कामना क्यो करते हो ? अगर कामना करते हो तो तुम्हारा दान अशुद्ध है वह सच्चा दान नही है । देने पर मिलेगा तो अवश्य ही, मगर पाने की कामना करने से उतना नही मिलेगा जितना मिलना चाहिए । अतएव विवेकवान् पुरुष ऐसा विचार नही करते ।

(८)

भाइयो ! यों तो सभी दान उत्तम है, किन्तु उन सब में जीवन की दृष्टि से आहारदान का विशेष महत्व है ; ससारी

जीवों के प्राणों का आधार आहार है। आहार देना एक प्रकार से जीवन देना है। आहार के अभाव में जीवन नही टिक सकता और धर्म क्रियाएँ करने का भी अवकाश नही रहता।

(९)

ज्ञानी जन समस्त दानों में अभय दान को उत्तम कहते है।। अभय दान की तुलना में न गायों का दान ठहरता है, न भूमि का दान ठहरता है और न अन्न का दान ही ठहर सकता है।

गाय, भूमि और अन्न आदि सब वस्तुएँ प्राणों के पीछे है। प्राण रह जाएँ तो इन सब वस्तुओं का मूल्य है; प्राण न रहे तो सब वृथा है। अतएव स्पष्ट है कि प्राणी के सामने प्राण ही प्रधान वस्तु है और इसलिए प्राण रक्षा करना अथवा किसी को अभयदान देना ही सबसे बड़ा दान है।

(१०)

अभयदान सब प्रकार के दानो में उत्तम दान माना गया है। प्राणों की रक्षा अभयदान है और प्राण सबको सबसे अधिक प्रिय होते हैं। जो वस्तु जितनी प्रिय है, उसका दान उतना ही अधिक महत्व पूर्ण होता है। यही कारण है कि भगवान ने स्वयं अभयदान को सब दानो मे उत्तम कहा है।

(११)

गृहस्थ धन आदि पदार्थो का संचय करता है। उन पर उसकी ममता भी होती है। अतएव ममता का त्याग करना

उसके लिए उचित है। उन पदार्थों के उपार्जन और संरक्षण आदि मे आरंभ–सभारंभ आदि से उत्पन्न हुए पापो का प्रक्षालन करने के लिए भी दान धर्म का सेवन करना आवश्यक है।

(१२)

कृपण और लोभी के हाथ से दान नहीं दिया जाता। दान उदारता का लक्षण है। जिसमे यह लक्षण होगा, उसमे धर्म के अन्यान्य लक्षण भी स्वतः आ जाते है। उदारता के साथ क्षमा, निर्लोभता आदि गुण स्वयं खिचे चले आते है।

(१३)

शास्त्रो का दान देना, निर्ग्रन्थ प्रवचन अथवा दूसरे ग्रन्थों का दान देना, जिससे जनता का अज्ञान दूर हो सके, ज्ञानदान कहलाता है। बहुत-से लोग लड्डू, बताशा, नारियल आदि की प्रभावना करते हैं; मगर सच्ची प्रभावना जिन-शासन के संबंध मे फैले हुए अज्ञान को दूर करने मे है।

(१४)

दान देकर न पश्चात्ताप करना योग्य है न अभिमान करना और न ऐहसान समझना ही उचित है। वास्तव में अभिमान या ऐहसान की बात भी क्या है किसान खेत में बीज बोकर अभिमान क्यों करे, ऐहसान किस पर करे उसने अपने ही लाभ के लिए बीज बोया है।

(१५)

दानी जगत को अपने वश मे कर लेता है। दाता देवता को भी अपनी मुट्ठी में करके उसके इष्ट कार्य कर लेता है। अतएव दान देना मनुष्य का बड़ा भारी गुण है।

(१६)

जैसे वड़ का छोटा सा बीज जमीन मे बोया जाता है, किन्तु पानी का संयोग पाकर कालान्तर में वह हजारों को छिपा देने वाला विशाल वृक्ष बन जाता है, उसी प्रकार आहार दान देने से पुण्य का बीज भी विशाल रूप ग्रहण करके फल देता है।

(१७)

दान देने से आप को किसी प्रकार की कठिनाई का सामना करना पड़ता हो तो भी मैं यही कहूँगा कि आप उस कठिनाई को सहन करके भी दान दीजिए। दान के प्रभाव से आपकी कठिनाइयां उसी प्रकार विलीन हो जाएँगी जिस प्रकार प्रबल आँधी के वेग मे मेघ की घटाएँ छिन्न भिन्न हो जाती है। याद रखिए, दान महान् फलदायी होता है।

(१८)

जो लोग धर्मात्मा को सहायता नही देते और पापियो के सामने अपनी थैलियों के मुह खोल देते है वे क्या कर रहे है ? याद रखो, वे पत्थर की नाव पर बैठे है और उनके डूबने में देर नही लगेगी। उनका कही पता भी नही चलेगा।

—: शील :—

(१)

जिस कार्य से शीतलता की प्राप्ति हो, वही शीलव्रत है। जो कुशील को सेवन न करता हुआ सुशीलता को धारण करता है, वह सहज ही आवागमन की परम्परा रूप भवाटवी को उल्लंघन करके अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है।

(२)

किसी प्राणी के साथ द्रोह या वैर-विरोध न करना निवृत्ति है और अनुग्रह करना तथा दान करना प्रवृत्ति है। इस प्रवृत्ति और निवृत्ति के मेल से शील का स्वरूप परिपूर्ण होता है। शील रूपी रथ के यह दो चक्र हैं। इन्हीं से शील-रथ अग्रसर होकर शीलवान् को अपने लक्ष्य तक पहुचाता है।

(३)

जैसे कल्पवृक्ष सभी चिन्तित और अभिलषित पदार्थों का दाता है, उसी प्रकार शील से भी सभी इष्ट पदार्थों की प्राप्ति होती है।

(४)

इस संसार में शील के समान शान्ति और विश्रान्ति देने की शक्ति किसी मे भी नही है। इस लोक मे भी और परलोक मे भी शील से अनन्त शान्ति प्राप्त होती है।

-: तप :-

(१)

जैसे सोने में लगा हुआ मैल आग में सोने को तपाने से दूर हो जाता है, उसी प्रकार अनादि काल से आत्मा के ऊपर जो मलिनता चढ़ी हुई है, वह तपस्या की आग से नष्ट हो जाती है। तपस्या आत्म-शुद्धि का प्रधान कारण है।

(२)

जैसे अग्नि के निमित्त से पानी जल जाता है और दूध निखालिस हो जाता है, उसी प्रकार तपस्या की तीव्र अग्नि जब प्रज्वलित होती है तो कर्म सब भस्म हो जाते हैं और आत्मा शुद्ध हो जाता है।

(३)

तपस्या से इन्द्रियों का दमन होता है और मन काबू में आ जाता है। उस स्थिति में ध्यान अच्छा, स्थिर और अखण्ड होता है।

(४)

याद रखना, काम को वश में करने का सबसे अधिक कारगर और श्रेष्ठ उपाय तपस्या करना ही है। तपस्या किये

बिना इन्द्रियों पर काबू नही पाया जा सकता और न मन को ही वश मे किया जा सकता है।

(५)

जैसे जगल को जलाने मे दावानल प्रबल है। दावानल को शान्त करने मे मेघ शक्तिशाली है। और मेघ को छिन्न भिन्न करने में वायु समर्थ होती है। उसी प्रकार कर्मो को चकनाचूर करने मे तपश्चर्या समर्थ होती है।

(६)

त्याग और तपस्या की दवा का सेवन करने से समस्त रोग-शोक दूर हो जाते है। ताव और तिजारी जैसे रोग उसके पास भी नहीं फटक सकते। इस दवा का सेवन करने से निरजन पद की प्राप्ति होती है और अनन्त अक्षय एवं अव्याबाध आनन्द भी प्राप्त होता है।

(७)

लोग समझते हैं कि आग मे वस्तुओं को जला देना यज्ञ है, परन्तु नही, यज्ञ तपश्चर्या का नाम है, जिसमे पापो को जला कर भस्म किया जाता है और जिससे आत्मा निर्मल हो जाती है।

(८)

जिसने मूर्खतावश भग पीली है, वह उसके नशे से बचना चाहे तो दुनिया मे ऐसी भी चीजे मौजूद है, जिनके

सेवन से नशा नहीं चढ़ता। इसी प्रकार बद्ध कर्मों को निष्फल बनाने के लिए भी भगवान् ने एक उपाय बतलाया है और वह उपाय है—तपश्चरण करना।

(९)

कई लोग जप करते हैं और कहते हैं—महाराज, हमें जप करते-करते इतने वर्ष हो गये, मगर अभी तक कोई सिद्धि नहीं हुई! मगर उसे समझना चाहिये कि उसने जप तो किया है मगर जप के साथ तप नहीं किया। तप के बिना सिद्धि कैसे हो सकती है? दुनियां में इसीलिये जप तप के साथ लगा है।

(१०)

संसार में जितने भी महात्मा हो गये हैं और जिनकी महिमा का जगत में विस्तार हुआ है उन सबने तपश्चरण किया था। तपश्चरण के बिना आज तक कोई भी पुरुष महात्मा नहीं बन सका तो परमात्मा बनना तो दूर रहा!

(११)

किसी भी महापुरुष का जीवन लीजिए-आपको सब में एक ही बात मिलेगी। मानो सबकी जीवनी एक ही चक्र पर घूमती है। वह चक्र है तपस्या का! प्रत्येक महापुरुष के जीवन में तप का ही तेज उद्भासित होता है। महापुरुष का परिचय अर्थात् तप की शक्ति का परिचय! तपस्या के प्रताप

से महापुरुष का जन्म होता है। तप के प्रताप से ही वह अलौकिक कृत्य करके दिखलाते है।

(१२)

प्राचीन उदाहरण सैकड़ो की ही नही, सहस्त्रो की संख्या मे मौजूद है। पर तपस्या के प्रभाव को आज भी प्रत्यक्ष देखा जा सकता है। कलकत्ता में और दूसरे स्थानों मे गांधीजी ने अपने जीवन मे कई बार उपवास किये। उन्होने भोजन त्याग दिया। उसके प्रभाव से कठोर से कठोर और पापी से पापी मनुष्यो के हृदय भी बदल गये। उन्हे भी तपस्या के सामने झुकना पड़ा।

(१३)

स्वेच्छापूर्वक, पारमार्थिक दृष्टि से कष्टों को सहन कर लेना तप है। तप का बहिष्कार करने का मतलब यह होगा कि जब कोई कष्ट आवे तो उसे स्वेच्छा पूर्वक सहन न किया जाय! सहन न करने मात्र से कष्टो का आना तो रुक नही जायगा, तप को त्याग देने से सहन करने की शक्ति अवश्य नष्ट हो जायगी। ऐसी स्थिति मे जीवन कितना क्लेशमय और दीनतामय हो जायगा, यह कल्पना ही बड़ी भयावह है!

(१४)

भगवान् ने उपवास की तपस्या को महत्त्व देने के लिए बाह्य तपों मे अनशन तप को सब से पहले गिना है। गृहस्थों

के लिए भी अष्टमी, चतुर्दशी और पक्खी के दिन उपवास करने का विधान है। अनशन करने से आत्मा की शुद्धि होती है, कर्मों की निर्जरा होती है, इन्द्रियां वश में हो जाती हैं, मन पर काबू प्राप्त किया जा सकता है, ज्ञान-ध्यान में होने वाले प्रमाद को दूर किया जा सकता है। इन सब लाभों को ध्यान मे रखकर भगवान् तीर्थंकर ने अनशन तप पर विशेष रूप से बल दिया है।

(१५)

तपस्या में लौकिक और लोकोत्तर-दोनों प्रकार का फल प्रदान करने की प्रबल शक्ति है। लौकिक प्रयोजन के लिए की गई तपस्या लौकिक कार्य को सिद्ध करती है और लोकोत्तर आध्यात्मिक प्रयोजन के लिए की जाने वाली तपस्या से लोकोत्तर प्रयोजन की सिद्धि होती है। मगर तपस्या कभी निष्फल नहीं जाती है।



~: भावना :~

(१)

जिसकी जैसी भावना होती है, उसे वैसी ही सिद्धि मिलती है ।

(२)

भाइयो ! जो चित्त की चपलता का निरोध कर देता है, मन को इधर-उधर नहीं भटकने देता और जो आत्मा के गुणो मे ही रमण करता है, वह मनुष्य ससार-सागर से पार हो जाता है ।

(३)

मानसिक विचार ही मनुष्य को डुबोने वाले और उबारने वाले हैं । अगर आपका विचार शुद्ध होगा तो उच्चार भी शुद्ध होगा और विचार एवं उच्चार शुद्ध होगा तो आचार भी शुद्ध होगा ।

(४)

दान, शील और तप के साथ भावना को जो अंत में स्थान दिया गया है; वह इसीलिए कि दान आदि का फल

अन्त में भावना के अनुसार ही प्राप्त होता है। 'यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी' जिसको जैसी भावना होती है, उसे वैसा ही फल प्राप्त होता है। सद्भावना के विना कोई भी क्रिया पूर्ण फलदायक नही होती।

(५)

मन चिन्तामणि रत्न से भी अधिक मूल्यवान् है। क्योंकि चिन्तामणि चिन्तित पदार्थ की पूर्ति करती है परन्तु चिन्तन तो मन से ही किया जायगा ? मन न होगा तो किससे इष्ट पदार्थ का चिन्तन करोगे ? चिन्तामणि की उपयोगिता की पहिचान कराने वाला भी मन ही है। अतएव मन उससे भी अधिक मूल्यवान् सिद्ध होता है। वह भाग्योदय से आपको सहज ही प्राप्त है फिर भी उसका दुरुपयोग क्यों करते हो ? मन का दुष्प्रणिधान करना चिन्तामणि से कपाल फोड़ने की अपेक्षा भी अधिक मूर्खता है।

(६)

सचाई यह है कि कोई किसी को सुख दुख: नही पहुचा सकता। मनुष्य का मन ही उसके दुखों की सृष्टि करता है और वही उसके सुख की उत्पन्न कर सकता है। संसार चक्र मे भ्रमण करने वाला मन ही है।

(७)

केवल त्यागी का वेष धारण करने से काम नही चलेगा और भोग न भोगने मात्र से भी काम नहीं चलेगा, परम पद

पाने के लिए तो मन को त्यागी बनाना पड़ेगा । विषयो के त्याग के साथ ही साथ विषयो की वासना का भी त्याग करना आवश्यक है । जब वासना दूर हो जाय तभी त्याग की परिपूर्णता समझनी चाहिए । वासना को दूर करने के लिए स्वाध्याय, ध्यान, चिन्तन, मनन की आवश्यकता है ।

(७ब)

तुम दान शील तप और भावना आदि के रूप मे कोई धर्म क्रिया करो, उनके फल की वांछा मत करो । सकाम क्रिया करने से क्रिया के फल में विपरीतता और न्यूनता आ जाती है और निष्काम भाव से क्रिया करने पर पूर्ण फल की प्राप्ति होती है ।

(८)

बिल्ली अपने बच्चों को भी मुंह से पकड़ती है और चूहे को भी उसी मुँह से पकड़ती है । परन्तु दोनों के पकड़ने में भावना का कितना भेद रहता है ।

(९)

भाई ! भले तू त्रिदड को धारण कर । भले नंगा रह । मूड मुँडा ले या सिर पर जटा का भार धारण करके फिर । भले किसी अधेरी गुफा मे रह अथवा ऊचे पर्वत की चोटी पर निवास कर । भले शिला पर आसन जमा कर बैठ । भले वेदों के सिद्धातों का पाठ कर लेकिन तेरा हृदय यदि अशुद्ध है तो

इसमें कुछ भी नही होना-जाना हैं। आत्मा का कल्याण तो तभी होगा, जब तू अपने हृदय को शुद्ध बनाएगा।

(१०)

अगर सचमुच भलाई चाहते हो तो दिल को साफ करो। हृदय को पवित्र भावनाओ के जल में स्नान कराओ। तुम चाहे कहीं किसी भी तीर्थ में जाकर नहालो, गंगा, यमुना, या पुष्कर मे गोते मार आओ, किन्तु जब तक दिल साफ नहीं है तो आत्मा का कल्याण होने वाला नहीं।

(११)

मन के द्वारा किया हुआ पाप ही पाप कहलाता है। मन के सहयोग के बिना केवल शरीर द्वारा किया गया आचरण पाप नही। लोक व्यवहार में ही देखो। शरीर से जिस प्रकार प्रियतमा का आलिंगन किया जाता है, उसी प्रकार पुत्री का भी आलिंगन किया जाता है। शारीरिक क्रिया से कोई अन्तर नहीं होता, किन्तु मन में अन्तर होता है। यही कारण है कि दोनों की भावना मे अन्तर होने से एक क्रिया लोक में दूसरी दृष्टि से देखी जाती है और दूसरी क्रिया दूसरी दृष्टि से। दोनों में कितना अन्तर है? यह अन्तर मनोभावना के कारण ही है।

(१२)

वैद्य समझता है कि अगर यह बीमार अन्न खाएगा तो इसका रोग बढ़ जायगा ऐसा समझ कर वह रोगी को अन्न

नही खाने देता। दूसरा आदमी द्वेषभाव से, किसी को भूखा रख कर मार डालने के विचार से किसी को अन्न नही खाने देता। मोटे तौर पर दोनों का काम समान मालूम होता है। पर दोनो अन्न खाने से रोकने वालों की भावना मे बडा अन्तर है। एक जीवित रखने की भावना से रोकता है और दूसरा मार डालने की भावना से रोकता है। जब दोनो की भावनाएँ बिलकुल भिन्न-भिन्न है—एक दूसरी से एकदम विपरीत है तो क्या दोनों को समान फल की प्राप्ति होगी ? नही, ऐसा कदापि नहीं हो सकता। प्रकृति के राज्य मे ऐसा अंधेर नही है। जिसकी जैसी भावना होती है इसको वैसा ही फल प्राप्त होता है। मुनिजन कल्याण-भावना से प्रेरित होकर, पाप कर्मों के त्याग का उपदेश देते है अतएव उन्हे अन्तराय कर्म का बन्ध नही होता; वरन् उपदेश देने से उनके पूर्वबद्ध कर्मों की निर्जरा होती है।

(१३)

भावना के भेद से एक सरीखे कार्य के फल में भी महान् अन्तर पड़ जाता है। अतएव सच्चा समझदार और पंडित वही है जो पापो से डरकर अपनी भावना को पवित्र और पुण्यमय रखता है। अन्तःकरण मे कषाय को जागृत नही होने देता। कदाचित् कोई सांसारिक कार्य करना पड़ता है तो भी यतना रख कर अधिक पाप से बचने का प्रयत्न करता है।

(१४)

मरुदेवी माता हाथी के हौदे पर गृहस्थ वेष में बैठी थी । गृहस्थ के वेष मे थी तो गहने और कपडे भी पहने होगी फिर भी भावना शुद्ध हो जाने के कारण उन्हें उसी समय केवल ज्ञान हो गया और मोक्ष भी प्राप्त हो गया । क्या रुका उनका मोक्ष धन से ? नही ! भाइयों ! पाप धन में नहीं, मन में है ?

(१५)

मन को जीतने से ही असली जीत है। और मन के हारने से हार है । तुम व्रत करो, उपवास करों, कुछ भी करो, जब तक मन को न जीत लोगे, तुम्हारा उद्देश्य सफल न होगा।

(१६)

मन को जीत लेने पर पाँचों इंन्द्रियों पर विजय प्राप्त हो जाती है ।

(१७)

भावना को पवित्र बनाने में पैसे नही लगते, और किसी प्रकार की भी हानि नही उठानी पड़ती । फिर क्यों अपने चित्त को पवित्र नही बनाते । भावना को कदाचित् पवित्र नही बना सकते हो तो अपवित्र भी क्यो बनाते हो ? मन से किसी का भला नही चाहते तो कम से कम बुरा तो मत चाहो । विना पैसा-पाई खर्च किये मन पुण्य का मार्ग तुम्हारे लिए खुला है । इसमे ही अपना कल्याण करो ।

(१८)

भाइयों ! याद रखो कभी किसी का अनिष्ट न करो और न सोचो। दूसरों का अनिष्ट करना अपना ही अनिष्ट करना है। दूसरो का अहित सोचने से उनका अहित हो ही जायगा, यह कौन कह सकता है। परन्तु सोचने वाले का अहित होने मे लेश मात्र भी शका नही है। श्री कृष्ण को मारने के लिए कंस ने कितने प्रयत्न किये परन्तु कृष्णजी का बाल भी बाका न हुआ। जिसे मारने का प्रयत्न किया था, उसी के हाथो से कस मारा गया अतएव कभी किसी का बुरा मत सोचो।

(१९)

अशुभ विचार करने से विचार करने वाले का ही अहित होता है। बिल्ली के कहने या चाहने से छीका तो टूट नहीं सकता; किसी के चाहने से कोई दरिद्र या दु खी नहीं हो सकता। इसके विपरीत दूसरो का बुरा चाहने वाला अपना बुरा स्वय ही कर लेता है।

(२०)

आर्त्तध्यान करोगे तो क्या पाओगे ? प्रथम तो दुख भोगते समय ही आर्त्तध्यान के कारण वह दुख अत्यन्त दुस्सह प्रतीत होगा उसकी उग्रता बढ़ जायगी। दूसरे तुम्हारी सहन शक्ति का ह्रास हो जायगा। तीसरे, भविष्य के लिए पुनः अशुभ कर्मो का बन्ध होगा। अतएव जब दु.ख सहना अनिवार्य हो तो हिम्मत रक्खो, दृढता रक्खो, सम भाव को मत खोओ।

(२१)

जगत के प्रत्येक जीव के साथ पुण्य और पाप लगे हुए हैं। और पुण्य पाप का मुख्य आधार जीव के परिणाम है। अतएव इस बात का निरन्तर ध्यान रखना चाहिए कि बुरे विचार कभी उत्पन्न न हो सके।

(२२)

मनुष्य का जीवन यथार्थ में उसकी आन्तरिक भावनाओं से ही परिचालित होता है अथवा यों कहना चाहिए कि वह भावनाओं का ही बाह्य रूप है! भावना से ही नरक का निर्माण होता है और भावना से ही स्वर्ग कि सृष्टि होती है!

(२३)

इस समय तू अकड़ता फिरता है। कहता है-कौन मेरा कुछ बिगाड़ सकता है! मै ऐसा हूं, मैं वैसा हूं! थोड़े-से पुद्गल इकट्ठे कर लिये कि बड़बड़ाने लगा और अपने में नहीं समाने लगा। पर आगे को भी कुछ सोचता है कि नहीं? यह पूंजी तेरा उद्धार कर देगी? ऊँची हवेली की छत तुझे स्वर्ग में पहुंचा देगी? नही, तेरा उद्धार तेरी आत्मा से होगा। मन को जीतने से ही तू पार लग सकेगा, अन्यथा नहीं।

(२४)

अन्य अन्य धर्माचरण करने के लिये कुछ द्रव्य खर्च करना पड़ता है या कष्ट उठाना पड़ता है, किन्तु अपनी भावना

को शुद्ध रखने के लिए न तो कानी कौडी भी खर्च करनी पडती है ! और न कोई कष्ट उठाना पडता है। फिर भी आत्मा का अनन्त कल्याण हो जाता है ! ऐसी स्थिति मे क्यों न अपने विचारो को पवित्र बनाने का निरन्तर प्रयत्न किया जाय ?

(२५)

प्रत्येक समय अपने विचारो को पवित्र ही रक्खो, उनमें कभी अपवित्रता मत आने दो। अच्छे विचार रक्खोगे तो समझना कि दूध पिया है, बुरे विचार करोगे तो समझ लेना कि धतूरे के बीज घोट कर पी लिये है।

(२६)

भाइयो ! कभी आपने विचार किया हैं कि पाप का वास कहाँ है ? पाप धन मे या सोनेचांदी में है ? नही। हीरों और पन्नो मे है। नही दूध-दही या कपड़ो मे है ? नही ! पाप का वास तो मन मे है। मन ही पापों का भंडार है।

(२७)

जीव की जैसी मति होती है वैसी उसकी गति होती है।

(२८)

जिसे अपनी गति सुधारनी है उसे अपनी मति सुधारनी चाहिए और जिसे मति सुधारनी है उसे अपना जीवन सुधारना चाहिए।

(२६)

असली लाल रंग चढ़ेगा तो बढ़िया मलमल पर ही चढेगा। उत्तम मलमल केसरिया रंग मे डालते ही सुन्दर रंगी हुई दिखने लगती है; उसी प्रकार स्वच्छ हृदय वाले पर धर्म का सुन्दर रग चढ़ता है। जो मलमल के समान प्राणी है उन पर वीतराग देव की वाणी रूप केसरिया रंग तत्काल ही चढ जाता है। किन्तु जैसे मलिन वस्त्र पर रंग नही चढ़ता उसी प्रकार मलिन चित्त मनुष्य का मन भी धर्म के रग में नही रंगता। बड़ा मुश्किल हो जाता है उनके चित्त पर धर्म का रग चढ़ना। इस रंग में रंगने के लिए पुण्य की आवश्यकता होती है।

(३०)

त्रिफला की फांकी लेना सुखद नही जान पड़ता किन्तु जब पेट स्वच्छ हो जाता है और भोजन की रुचि बढ जाती है और तबीयत हल्की महसूस होती है तो कितनी प्रसन्नता होती है इसी प्रकार अन्तःकरण को शुद्ध करने के लिए त्रिफला के समान जब रत्नत्रय का सेवन किया जाता है; तपस्या और संयम की आराधना की जाती है तब कष्ट होता है किन्तु उस कष्ट को कष्ट न समझकर जो समभाव रखते है उन्हें केवल ज्ञान आदि फल की प्राप्ति होने पर कितना आनंद मिलता है।

(३१)

मन सब पर सवार रहता है, परन्तु मन पर सवार होने वाला कोई विरला ही माई का लाल होता है। मगर

धन्य वही है और सुखी भी वही है जो अपने मन पर सवार होता है।

(३२)

मन भले ही बहुत चपल, ढीठ और बिगड़ैल क्यों न हो, आखिर वह वशीभूत किया जा सकता है । आत्मा मे उसको काबू मे लाने की शक्ति है । आत्मा की शक्ति के सामने वह पराजित हो जाता है । आत्मा स्वामी है, मन उसका अनुचर है । मगर आत्मा ही जब अपने स्वरूप को भूलकर मन का चर बन जाती है, तब मन उसे दुखो और भयानक यातनाओ के मार्ग मे ले जाता है ! अतएव जो आत्महित के अभिलाषी है, उन्हे अपने कर्त्तव्य का विचार करना चाहिए । अभ्यास के द्वारा मन पर नियत्रण स्थापित करना चाहिए ।

(३३)

चित्त जब कभी कुमार्ग की ओर जाने लगे, उसी समय उसे रोक दो, जैसे गलत रास्ते पर जाने को उद्यत हुए घोड़े की लगाम खीच ली जाती है। ऐसा करने से धीरे-धीरे वह आपके अधीन हो जायगा और फिर कुमार्ग की ओर जाना ही पसन्द नही करेगा ।

(३४)

लोक मे कहावत है—निकम्मी लुगाई को नाते जाने की सूझती है। यह कहावत चाहे जैसी हो पर मन के सम्बन्ध में

ठीक बैठती है। निकम्मा मन पाप की ओर दौड़ता है। अतएव इसे काम मे लगाये रखना योग्य है।

(३५)

मन कभी बेकार नहीं रहता। यह ऐसा भूत है कि कभी क्षण भर भी खाली नही रहता अतएव उसे उलझाये रखने के लिए धर्म के आराम (उद्यान) में विचरण करना उचित हैं। मन का आतम-चिन्तन, तत्व चिन्तन, श्रुत परिशीलन और बारह अनुप्रेक्षाओं के चिन्तन आदि में लगाये रखना चाहिये।

(३६)

अगर आप चाहते है कि आपका मुखमण्डल दर्शनीय बने, सुन्दर हो तो आप अन्तःकरण में पवित्र भावनाएं उत्पन्न कीजिए। आपकी भावना जितनी उच्चकोटि की होगी, मुखमण्डल का सलौनापन भी उसी उच्चकोटि का होगा।

(३७)

अपने मन में जैसे विचार होगे, वैसे दूसरे के विचार हो जाएँगे। अगर आपके हृदय मे जगत के समस्त जीवों के प्रति मैत्री का भाव उत्पन्न हो गया है और शत्रुता के लिए किसी भी कोने मे जरा भी अवकाश नही रहा है तो समझ लीजिए कि सारा जगत् आपको भी मित्र भाव से देखेगा। आपको किसी से भय खाने की आवश्यकता नही है।

(३८)

भलाई के विचार बड़ी कठिनाई से आते है, लेकिन बुरे विचार आने मे देर नही लगती। महल बनाने मे वर्ष बीत जाते है, मगर गिराने मे क्या देर लगती है!

(३९)

भावना के प्रभाव से केवल-ज्ञान और मोक्ष की भी प्राप्ति हो सकती है। अतएव जो बने सो करो और जो न बन सके उसके लिए भावना रक्खो तो भी आपका कल्याण होगा।

(४०)

यद्यपि पानी में कटुकता नही है, नशा उत्पन्न करने का गुण नही है, और मारने की शक्ति भी नही है फिर भी अफीम के संसर्ग के कारण उसमे वह सब उत्पन्न करने की शक्ति आ जाती है। इसी प्रकार दान, शील, तप, भावना, व्रत, प्रत्याख्यान आदि स्वभावतः अशुद्ध नही है, किन्तु अशुद्ध श्रद्धा के कारण-संसर्ग दोष से उनमे अशुद्धता आ जाती है।

(४१)

जिसकी धारणा जैसे बन जाती है, वह सभी घटनाओं को और सभी तथ्यो को उसी रूप मे ढाल लेता है। जिसकी आँखो पर जैसे रंग का चश्मा लगा होगा उसे सब वस्तुएँ उसी रंग की दिखाई देने लगेगी।

(४२)

प्राय. लोग भय से प्रेरित होकर ही अपने मन मे भूत प्रेत की कल्पना कर लेते है, और उनकी भावना का भूत ही उन्हे क्षति पहुंचाता है। भावना मे बड़ी शक्ति है। वह भूत न होने पर भी भूत को खड़ा कर देती है, मनुष्य को विह्वल बना देती है और ऐसी स्थिति उत्पन्न कर देती है, जैसी कि वास्तविक भूत भी नही पैदा कर सकता। यह एक प्रकार की मानसिक दुर्बलता ही है।

(४३)

पाप कर्म का उपार्जन मन से ही किया जाता है, तन से नही। जिस शरीर से पत्नी का आलिगन किया जाता है, उसी शरीर से पुत्री का भी आलिगन किया जाता है। मगर दोनों के आलिंगन मे भावना का कितना महान् अन्तर होता है।

(४४)

खोटे काम सूझते है, जब खोटे दिन आ जाते हैं।



-: अहिंसा :-

(१)

दया धर्म के बिना धर्म कैसा ? सब धर्मों का मूल दया है। जहाँ दया नही वहाँ धर्म नही। दया के विकास के लिए ही अन्य सब धर्मों का विधान है।

(२)

जैसे आप सुख चाहते है वैसे ही अन्य प्राणी भी सुख चाहते है। और जैसे आप दु.ख से बचना चाहते है, उसी प्रकार अन्य समस्त प्राणी भी दु.ख से बचना चाहते है ऐसा समझकर अन्य प्राणियो के प्रति व्यवहार करो। यही अहिसा धर्म है। यही शाति का मार्ग है।

(३)

मन से, वचन से और शरीर से किसी को पीड़ा मत पहुचाओ। निश्चित् रूप से समझलो कि दूसरो को पीडा पहुँचाना अपने लिए दु.खो का बीज बोना है और दूसरो का दु.ख मिटाना अपना दु.ख मिटाना है।

(४)

अगर स्वयं सुखी बनना चाहते हो तो दूसरो को सुखी

बनाओ। दुःख से बचना चाहते हो तो दूसरों को दुःख से बचाओ। अपना कल्याण चाहते हो तो दूसरो का कल्याण करो।

(५)

हे भव्य जीवो ! यदि तुम सुखी रहना चाहते हो तो किसी के सुख में बाधक मत बनो। यदि तुम अपने लिए दुःख को अनिष्ट समझते हो तो दूसरों को दुःख न पहुँचाओ। जिस प्रकार स्वयं जीवित रहना चाहते हो, उसी प्रकार सभी प्राणी जीवित रहना चाहते है। कोई मरना नही चाहता। अतः किसी के प्राणों का वियोग मत करो।

(६)

अगर आपके अन्तःकरण में दया और प्रेम का स्रोत बहता होगा तो वह आपके विरोधी के अन्तकरण को भी शीतल बना देगा। आपकी अहिसा का झरना आपके प्रतिपक्षी के हृदय के वैर और क्रोध की आग को बुझा देगा।

(७)

जब साधक पूरी तरह निर्वैर हो जाता है तो प्रतिपक्षी पर भी उसका प्रभाव पड़ता है। जैसे किसी को क्रुद्ध देखकर सामने वाले के हृदय में भी क्रोध का आवेग आ जाता है, उसी प्रकार किसी को करुणाशील देख कर सामने वाले के हृदय में भी करुणा का संचार हो जाता है। कदाचित् करुणा का संचार न भी हो तो भी उसकी क्रूरता तो उपशान्त हो ही जाती है।

(८)

सुखी होना चाहते हो तो दूसरों को सुखी करो, शान्ति चाहते हो तो दूसरों को शान्ति पहुचाओ दु खो से बचना चाहते हो तो दूसरो को दु.ख से बचाओ। कष्ट नही चाहते हो तो दूसरों को कष्ट मत दो।

(९)

जो वस्तु जितनी अधिक प्रिय है उससे वंचित होने मे उतना ही अधिक दु ख होता है। यह बतलाने की आवश्यकता नही। आप अपने ही अन्तःकरण से पूछ सकते है कि आपको सर्वाधिक प्रिय क्या है ? प्राणों से अधिक प्रिय दूसरी कोई वस्तु नही। प्राणो की रक्षा करने के लिए आप सभी कुछ त्याग सकते हैं। यही कारण है कि प्राणों का नाश करना सबसे बड़ा पाप माना गया है।

(१०)

आप अपने जीवन के लिए दूसरों की सहायता लेते है और उस सहायता के अभाव में जीवित नही रह सकते, तो क्या आपका भी यह कर्त्तव्य नही है कि आप भी दूसरों की सहायता करे ? जो दूसरों से लेता ही लेता है और बदले में कुछ देता नही है, वह दीवालिया है ! वह दुनिया मे हिकारत की निगाह से देखा जाता है। उसे लोग घृणास्पद समझते है। क्या तुम ऐसे बनाना चाहते हो ?

(११)

मृत्यु को वही जीत सकता है जो मृत्यु से डरता नही है और जो जीवन और मरण को समान भाव से अपनाने के लिये तैयार रहता है। मृत्यु को वह जीत सकता है जो छोटे-बड़े समस्त प्राणियों की अपने निमित्त से होने वाली मृत्यु से बचता रहता है जो स्वयं मर कर भी दूसरों की मृत्यु को बचाता है, वही मृत्यु–विजेता बन सकता है। मौत की कल्पना से ही कांपने वाला कब मौत से बच सकता है ? जो अपने प्राणों की रक्षा के लिये दूसरे के प्राण हरण करता है। वह अपनी मौत को न्यौता देकर निकट बुलाता है, उसे एक बार नही, बार बार मौत का शिकार बनना पड़ता है।

(१२)

किसी को अधिकार नही कि वह तुम्हारे प्राण रूपी परम धन को लूटे, उसी प्रकार तुम्हें भी अधिकार नही कि तुम किसी के प्राणो के ग्राहक बनो। सब इस नीति का अनुसरण करोगे तो सभी सुखी रहोगे। इसके विरूद्ध व्यवहार करोगे तो भूतल कत्ल खाना बन जायगा। संसार अशान्ति का घर हो जायगा। हिसा चाहे पेट पालने के लिए की गई हो, चाहे जिह्वा लोलुपता के वशीभूत होकर की गई हो, चाहे धर्म के नाम पर की गयी हो हर हालत में पाप है। और हिंस्य तथा हिंसक दोनों को अशान्ति और व्यथा देने वाली है।

(१३)

भाइयो ! पर प्राणी के प्राणों को अपने ही प्राणों के समान समझो। किसी के प्राण मत लूटो। जीओ और जीने दो। इस सुनहरे सिद्धान्त को यदि ससार स्वीकार कर सके तो जगत मे अपूर्व शान्ति का संचार हो जाय ! फौज, पुलिस, कारागार, न्यायालय, और वकील की आवश्यकता ही किसी को न रह जाय।

(१४)

जैसे आग से आग 'शान्त नही होती, उसी प्रकार हिसा से हिसा शान्त नही होती ; हिसा का दमन करने के लिए भगवती अहिंसा को आवश्यकता है।

(१५)

अहिंसा अत्यन्त सरल है। इसमे छल-कपट के लिये रत्ती भर भी गुन्जाइश नही है। वह विशुद्ध है और उद्योत करने वाली है। सभी धर्मों का अहिंसा धर्म में ही समावेश हो जाता है, । ठीक उसी प्रकार जैसे हाथी के पैर मे सभी के पैरो का समावेश हो जाता है।

(१६)

दूसरो को सुख पहुचाओगे तो स्वयं सुखी होओगे। जब तुम अपने घर बना हलुआ पड़ौस मे भेजते हो तो पड़ौसी भी बदले मे तुम्हारे यहा भेजता है। इसी प्रकार तुम दूसरों को सुख दोगे तो स्वय भी सुख पावोगे।

(१७)

मनुष्य में अधिक शक्ति है तो वह शक्ति दुर्बलों की सहायता में व्यय होनी चाहिए न कि उन्हे सताने में, उनका गला घोटने में !

(१८)

हमारे जीवन में अहिसा का बड़ा ही महत्त्वपूर्ण स्थान है। अहिंसा ही हमारा पालन पोषण और रक्षण करती है। सत्य यह है कि अहिंसा जीवन है और हिंसा मौत हैं। यही कारण है कि धर्म में अहिंसा को सर्व प्रथम स्थान दिया है। वास्तव में अहिंसा के महत्त्व को देखते हुए उसे यह प्रधान स्थान मिलना ही चाहिए।

(१९)

जैसे अपने हित को महत्त्व देते हो, उसी प्रकार दूसरों के हितों को भी महत्त्व दो। यही अहिंसा का संदेश है। इसी में जगत की शान्ति निहित है। जुल्म और अत्याचार किसी के हक में अच्छे नही है।

(२०)

अहिंसा जीवन है, अमृत है और हिंसा मृत्यु है, जहर है। अहिंसा का त्याग करना जीवन का ही खातमा करना है।

(२१)

आप अपने अन्त करण मे करुणा का विमल स्रोत बहाओ और श्रद्धा रक्खो कि दूसरे प्राणियों पर की हुई करुणा वस्तुतः अपनी ही करुणा है ऐसा करने से आपका कल्याण होगा आप गुणी बनेगे। अवगुणों से बच जायेगे प्रभु के समीप पहुचेगे और भगवान की शरण मे पहुँच कर, अन्त में स्वयं ही भगवान् बन जाएँगे।

(२२)

जो प्राणी मात्र पर करुणा भाव रखता है वह मनुष्य के रूप मे देवता है। जो मनुष्य, मनुष्य–मात्र पर दया करता है वह मनुष्य है। जो मनुष्य होकर भी मनुष्य पर दया नही रखता उसमे मनुष्यता नही है। वह मनुष्य के रूप मे पशु से भी बदतर है। और जो मनुष्य, मनुष्य से घृणा–द्वेष रखता है उसके विषय मे क्या कहा जाय ?

(२३)

भाइयो ! जब किसी दु खी को देखो तो उसका दु.ख दूर करने की शक्ति भर कोशिश करो। अन्यथा बड़े होने का क्या सार निकला ?

(२४)

सच्चा अहिंसक वीरता दिखलाने के अवसर पर कायरता का आश्रय नहीं लेता। कायर मे अहिंसा की सच्ची भावना

होती ही नहीं है। वह तो अपनी कायरता को अहिंसा के पर्दे में छिपाने का प्रयास करता है।

(२५)

अपनी हथेली पर धधकता हुआ अंगार लेकर दूसरे पर फेंकने की इच्छा रखने वाला पुरुष मूर्ख है। क्या पता है कि दूसरे पर वह गिरेगा भी या नहीं? मगर जो गिराना चाहता है उसकी हथेली तो जले बिना रहेगी नहीं। इसी प्रकार दूसरों का बुरा सोचने वाला भी मूर्ख है। वह दूसरो का बुरा करने से पहले ही अपना बुरा कर लेता है! दूसरे के अपशकुन के लिए अपनी नाक कटवाना बुद्धिमत्ता का काम नहीं है।

(२६)

अहिंसा के बहिष्कार पर ही विचार कर देखिये। अहिंसा का बहिष्कार करने का मतलब होगा—हिंसा की प्रतिष्ठा करना। तब क्या हिंसा के आधार पर सृष्टि चल सकेगी? एक दूसरे की हत्या की ही फिराक में रहे तो संसार कब तक टिकेगा? आप इस कारण जिंदा है कि दूसरों ने आपका घात नहीं कर दिया है। इस प्रकार अहिंसा की बदौलत ही आपकी जिंदगी है। हिंसा मृत्यु है और अहिंसा जीवन है। मृत्यु के बल पर जो जीवित रहना चाहता है, उसकी बुद्धि की बलिहारी है!

(२७)

कई लोग आज भी कहते हैं कि अपने खाने-पीने और ऐश-आराम के लिए किसी जीव को मारने, काटने मे कोई दोष नही है ! भाइयो ! अगर इस नियम को सही मान लिया तो इस भूतल पर खून की नदियाँ बहने लगे ! अपनी सुख-सुविधा के लिये सभी को मार डालना चाहेगे । प्रत्येक सबल, निर्बल को मार डालने को तैयार हो जायगा । ऐसी भयानक स्थिति मे ससार मे क्या शान्ति रह सकेगी ? यह जो अमन-चैन आज दिखाई देती है, वह सब अहिंसा का ही प्रताप है । जिस दिन यह विचार सर्व साधारण जनता के दिल मे घर बना लेगा कि अपने सुख के लिए दूसरे को मारने-काटने में कोई दोष नहीं है, उसी दिन यह पृथ्वी नरक के समान बन जायगी । गनीमत यही है कि जीव मात्र मे करुणा के कुछ न कुछ कण विद्यमान रहते ही हैं ।

(२८)

मैं तो दावा करके कहता हूँ कि मानव जाति की सर्वोच्च सस्कृति का विकास अहिसा के विकास मे ही अन्तर्निहित है । अहिसा से बढ़कर और कोई सस्कृति नही हो सकती और अहिसा को छोड कर तो संस्कृति जैसी वस्तु हो ही नही सकती । अतएव जिस व्यक्ति, समाज या राष्ट्र ने अहिसा की जितनी अधिक साधना की है, उसने अपनी सस्कृति का उतना ही अधिक विकास किया है । अहिंसा संस्कृति की

कसौटी पर आज की दुनियाँ को जब हम कसने जाते हैं तो निराशा के सिवाय और क्या हाथ आता है ?

(२९)

दया के विना संसार का त्राण नहीं है। शान्ति की सैंकड़ों योजनाएँ बनाई जाएँ, मगर वे विफल ही होंगी, अगर उनके मूल में दया नहीं होगी। क्योंकि शान्ति का मूल आधार दया ही है।

(३०)

कीचड़ को कीड़च से धोने का प्रयास मत करो। खून के दाग को खून से धोने का प्रयत्न करना उपहासास्पद है! इसी प्रकार हिंसा-जनित पाप कर्म के फल से बचने के लिए हिंसा को मत अपनाओ। दया-माता की करुणामयी मुद्रा को अपने सामने रख कर ही कुछ करो। दया को बिसार कर काम करोगे तो अच्छा करने चलोगे और बुरा फल पाओगे। बकरा और पाड़ा जैसे पचेन्द्रिय जीवों की हत्या से किसी का कल्याण होना संभव नहीं है।

(३१)

अहिंसा के शस्त्र से वैरी का नहीं वैर का संहार किया जाता है और जब वैर का संहार हो जाता है तो वैरी मित्र बन जाता है। हिंसा वैरी का नाश करके वैर को बढ़ाती है। वह वैर की अपरिमित परम्परा को जन्म देती है।

(३२)

जब आप दूसरे का बुरा चाहेगे और बुरा करेंगे तो आपका भला कैसे हो सकता है। अतएव अगर अपना भला चाहते हो तो दूसरो का भला चाहो। हराम का माल खाने की इच्छा मत करो। और धर्मादे का सम्पति भी हडपने की इच्छा न रक्खो। गरीबो को मत सताओ।

(३३)

कई लोग अपने दु.ख का प्रतीकार करने के लिए हिसा का आश्रय लेते है। यदि मेरा लड़का जीवित रह जायगा तो एक पाड़ा मारूंगा अथवा बकरा चढाऊँगा' इस प्रकार की मनौती मनाता है। अपने हाथ से हिसा करने मे ग्लानि होती है तो दूसरे से कह कर करवाता है। किन्तु इस प्रकार एक की जान लेने से दूसरे की जान बच जाती तो सदैव जीवित रहने का सरल उपाय पाकर कौन जीवित न रह लेता ? राजा-महाराजा लाखों जीवों की हिसा करवा सकते है। मगर इस भूतल पर आज तक कोई सशरीर अमर नही रह सका।

(३४)

लोग माताजी को जगत् की माता मानते है, सब जीव-धारियों को उनका पुत्र समझते है और फिर भी उनके ही सामने, उन्ही के निमित्त, बकरा, पाड़ा आदि उनके पुत्रों के प्राण

लेते है ? क्या इससे कभी माता प्रसन्न हो सकती है ? क्या कोई भी माता अपने बच्चे का बलिदान चाह सकती है और उससे सन्तुष्ट हो सकती है ? शेरनी जैसी क्रूर समझी जाने वाली माता भी अपनी सन्तान की रक्षा करती है तो क्या सारे संसार की माता उससे भी ज्यादा क्रूर होगी ? वह अपनी सन्तान की रक्षा नही चाहेगी ? अवश्य चाहेगी । यही नही, अगर वह सच्ची माता है तो अपनी सन्तान का घात करने वाले से बदला लिये बिना नही रहेगी ।

(३५)

कितने ही अज्ञानी जन पहले की हुई हिसा के फल से बचने के लिए फिर हिसा का ही आचरण करते है । अर्थात् वे स्वर्ग को प्राप्त करने के लिए पशु बलि, यज्ञ होम आदि का आश्रय लेते है, किन्तु ऐसा करने वाले लोग गंभीर भूल करते है । जैसे खून से भिगा वस्त्र खून से ही साफ नहीं हो सकता, उसी प्रकार हिंसा आदि पापो के आचरण के द्वारा बाँधे हुए कर्म हिसा आदि से ही दूर नही हो सकते । पापी जीव पाप का आचरण करके शुद्ध नही हो सकता । आत्मशुद्धि के लिए पापों का त्याग करने की आवश्यकता है ।

(३६)

कोई भी धर्म हिसा का विधान नही करता । 'हिसा नाम भवेद्धर्मो न भूतो न 'भविष्यति' हिसा कभी धर्म नही हुई और न कभी होगी ही । हिसा और धर्म में परस्पर विरोध

है। जो हिंसा है वह धर्म नहीं और जो धर्म है वह हिंसा नही। यह वैदिक धर्म के ऋषियो की भी घोषणा है। ऐसी हालत मे हिंसा करके धर्म की कामना करने वाले लोग क्या दया के पात्र नही हैं।

(३७)

मनुष्य भी प्राणी है और पशु पक्षी भी प्राणी है मनुष्य की बुद्धि अधिक विकसित है, इस कारण उसे सब प्राणियों का बडा भाई कहा जा सकता है। पशु–पक्षी मनुष्य के छोटे भाई है। क्या यह कर्त्तव्य है कि वह अपने कमजोर भाई के गले पर छुरा चलावे ? नही, बड़े भाई का काम रक्षण करना है, भक्षण करना नही।

(३८)

अफ़सोस है कि जिन क्षत्रियों की वीरता जगत् में विख्यात थी और जो रणभूमि मे शस्त्रहीन शत्रु पर भी आक्रमण नही करते थे, उन्ही के वशज आज बकरो और पाड़ो पर शस्त्र चलाते हुए शर्मिदा नही होते और फिर भी अपने क्षत्रिय होने का अभिमान करते है ? कितना अधः पतन हो गया है ? क्षत्रिय वीर अपनी वीरता को विस्मृत कर बैठे है और कायरता के काम करके अपनी बहादुरी जतलाने मे संकोच नही करते ?

(३९)

अगर मांस मदिरा आदि चीजें अच्छी होती तो मंदिरों मे क्यों नहीं चढाई जाती ? ये खराब चीजे है, इसी कारण तो इन्हें मंदिरो मे नही जाने दिया जाता। भाइयो ? जब यह चीजे मन्दिरों में भी नही घुम सकती तो इनका सेवन करने वाला बैकुण्ठ मे कैसे घुस सकेगा। थोड़ी देर के लिए बैकुण्ठ की बात जाने दीजिये। यह चीजे इतनी अधिक हानिकारक है कि इस शरीर को भी नष्ट कर डालती है। इनका सेवन करने वाले नाना प्रकार की बीमारियों से पीड़ित होकर दु.ख भोगते हुए मरते है। भाइयों ! यह अभक्ष्य चीजे है। छोड़ने योग्य है।

(४०)

जो अंडे खाते है, कबूतर जैसे सीधे-साधे भोले प्राणियों का भी मास खा जाते है, बकरे को पेट में डाल लेते है, मछली को हजम कर जाते है और खा-पीकर ठाकुरजी के सामने पड़ कर साष्टांग नमस्कार करते है। वे क्या बैकुण्ठ पा सकते है ? क्या ठाकुरजी ऐसे हिसकों, निर्दयों और जिह्वालोलुपो को स्वर्ग मे भेज देगे ? अगर ऐसे लोग स्वर्ग मे चले जावे तो नरक मे कौन जाएगा, फिर तो नरक का द्वार ही बन्द हो जायगा।

(४१)

जैसे तुम मरना नही चाहते, जिन्दा रहना चाहते हो, उसी प्रकार सभी प्राणी जीवित रहना पसन्द करते है। किसी को भी मरना पसन्द नही है, अगर तुम्हे पकड़ कर कोई पुजारी किसी देव के आगे बलि चढ़ाना चाहे तो तुम उस पुजारी का क्या कहोगे ? उस देवी के विषय मे भी क्या सोचोगे ? बस, यही बात उन पशुओ के विषय मे भी सोचो । फर्क है तो इतना ही कि तुम व्यक्त वाणी मे बोल सकते हो और पशु नही बोल सकते ।

(४२)

भाइयो ! हिंसा के फल अत्यधिक कटुक हैं। वर्त्तमान मे भी और भविष्य मे भी हिंसा दुःख, संताप और अशान्ति उत्पन्न करती है। ऐसा समझ कर हिंसा से बचो और जीवों की दया करो। व्यक्ति, समाज और देश अहिंसा से ही शान्ति और सुख का अनुभव कर सकता है। इसलिए सुख चाहते हो तो कड़वे काचरे की वेल मत बोओ। हिंसा जहरीली वेल है। और उस वेल में फल जहरीले ही लगते है।

(४३)

एक ओर जब सभी दया को धर्म कहते हैं तो फिर यह बकरा-ईद कहाँ से आ गई ? और दशहरे के तथा नवरात्रि के अवसर पर बकरे और पाड़े मारने का सिद्धान्त कहाँ से निकल पड़ा ? यह सब जिह्वालोलुप लोगों की ईजाद है।

आपको इस चक्कर मे नही पड़ना चाहिए । सबको निश्चय कर लेना चाहिए कि दया धर्म है तो हिंसा धर्म नही हो सकता । जो लोग धर्म के नाम पर हिंसा करते हैं और उस हिंसा को अहिंसा का जामा पहनाना चाहते है और लोगो को यही बात समझाना चाहते हैं, वे स्वयं संसार में डुबेगें और उनकी बात मानने वाले भी डुबगे ; दया–माता ही बेड़ा पार करने वाली है ।

(४४)

जो लोग मुर्दे को तो कब्र में दफनाते हं और बकरे को मार कर उदर में दफनाते है, उनका जीवन कभी पवित्र नहीं बन सकता ।

(४५)

हाय ! मनुष्य जिस पेट को चार रोटियों से भर सकता है, उसी पेट के लिए पचेन्द्रिय जीवो का घात करने मे सकोच नहीं करता ! वह मास भक्षण करके जंगली जानवरो की कोटि में चला जाता है । अपनी क्षणिक तृप्ति के लिए दूसरे प्राणी के जीवन को लूट लेना कितना भारी अत्याचार है !

(४६)

अगर किसी ने चारो वेद पढ़ लिए हं, विविध शास्त्रों को कण्ठस्थ कर लिया है और ऊंचे दर्जे की विद्वत्ता प्राप्त कर ली है, मगर उस ज्ञान को आचरण मे परिणत नही किया,

जीवों पर दया नहीं की, तो उसकी विद्वत्ता वृथा है। उसने पुस्तकें रट-रट कर माथापच्ची की है, उनसे कोई असली लाभ नहीं उठाया। ज्ञान का फल दया है और जिसने जीवदया का पालन करके अपनी दशा पाली है, वही वास्तव में पण्डित है।

(४७)

संसार में जितने भी प्राणी हैं, उन्हें अपनी आत्मा के समान समझो। भेद-भाव मत रक्खो। कदाचित् कोई बालक अनीति से उत्पन्न हुआ है तो वह अनीति उसके माँ बाप ने की है। पाप किया है तो माँ बाप ने किया है उस उत्पन्न होने वाले बच्चे का इसमें क्या दोष है। उसका कोई अपराध नहीं है। उसे क्यों नष्ट होने देते हो ? उसकी रक्षा करो। उसके साथ निर्दयता का व्यवहार मत करो। समभाव रक्खो।

(४८)

भाइयो ! आप लोग कीडियों की दया पालने वाले हैं, किन्तु आप नहीं जानते कि दिन-रात आपके काम में आने वाली चीजों के लिए हजारों पंचेन्द्रिय जानवरों की हिंसा हो रही है। यह चमड़े की मुलायम चीजें कैसे बनती हैं। गर्भवती गाडर के पेट में जोर से लातें मारी जाती हैं। लात के आघात से गाडर का गर्भ गिर जाता है और गर्भ के चमडे से मुलायम मनीबैग आदि-आदि चीजें तैयार होती हैं। कहिए, कितनी घोर हिंसा है ? इस हिंसा को दयावान् श्रावक कभी सहन कर सकता है ?

(४९)

चमड़े के विना तुम्हारा कौन सा काम अटकता है ? चमड़े का बेग न रक्खो तो क्या तुम्हारा काम नही चलेगा ? घड़ी का पट्टा किसी धातु का लगा लोगे तो क्या तुम्हारी शान किरकिरी हो जायगी अत्यन्त मुलायम जूता न पहनोगे तो क्या विगड़ जायगा ? लाखों आदमी इन वस्तुओं का उपयोग नहीं करते तो क्या उनका कोई काम अटक जाता है ? फिर तुम क्यों इस घोर हिंसा के हिस्सेदार बनते हो।

(५०)

जो ज्ञान प्राप्त करके भी जीव हिंसा का त्याग नहीं करते, उनका ज्ञान निरर्थक है, उसकी कोई सफलता नही है। कोई मनुष्य औषध का ज्ञाता है, मगर रोग होने पर औषध का सेवन नहीं करता तो उसका ज्ञान किस काम का ?

(५१)

मनुष्य के लिये यह कितनी लज्जोत्पादक बात है ? समस्त जीव जाति में मनुष्य का विकासस्तर सबसे ऊँचा है और वह सर्वोत्कृष्ट प्राणी होने का दावा करता है। मगर उसके विकास का क्या यही परिणाम होना चाहिए कि वह अपने ही सर्वनाश पर उतारू हो जाय ?

(५२)

जगत में भांति-भांति के जीव-जन्तु है। उन सब में मनुष्य की बुद्धि अधिक विकसित है। उसे सबसे अधिक समझदार होना चाहिए। अन्य प्राणियो का रक्षक बनना चाहिए ऐसा करने मे ही मनुष्य की बुद्धिमता और विवेक की विशिष्टता है।

(५३)

दूसरों की शान्ति में ही तुम्हारी शान्ति है। अगर तुम्हारे देशवासी, तुम्हारे पड़ोसी सुखी होगे तो तुम भी सुखी रह सकोगे। अगर तुम्हारे चारों ओर अशान्ति की ज्वालाएँ भभक रही होंगी तो तुम्हे भी शान्ति नसीब नही हो सकती। इस प्रकार अपनी निज की शान्ति के लिए भी दूसरो को शान्ति पहुंचाने की आवश्यकता है। इन बातो को कभी मत भूलना कि दूसरो को अशान्त रखकर कोई शान्ति नही पा सकता।

(५४)

स्वार्थ मे अन्धे मत बनों। गरीबो को अधिक गरीब बना कर अपनी अमीरी बढ़ाने के तरीके छोड़दो। मत समझो कि हमारा पेट भरा है तो दुनिया का पेट भरा है। उनकी असली स्थिति पर विचार करो। हृदय में दया की भावना रक्खो। गरीबो की कुटिया मे जाकर देखो, उन्हे छाती से लगाओ और उनके अभावों को दूर करो। ऐसा करने मे गरीबों का ही नहीं तुम्हारा भी हित है।

(५५)

कई लोग कहा करते है कि अगर हम सांप, विच्छू शेर वाघ आदि विषैले और हिंसक जीवो को मार डाले तो क्या हर्ज है ? वे दूसरे जीवों को मारते है, अतएव उन्हे मार देने से हिंसा रुक जायगी । परन्तु यह विचारधारा अत्यन्त भ्रमपूर्ण है और उलटी है। ऐसे लोगो से पूछना चाहिए कि दूसरे प्राणियों को मार डालने के कारण अगर सिंह आदि मार डालने योग्य है तो सिंहादि को मार डालने के कारण मनुष्य भी मार डालने योग्य क्यों नही साबित हो जायगा ? इस प्रश्न का वे क्या उत्तर देगे ?

(५६)

भाइयो ! इस तरह हिंसा पर उतारू हो जाने से अनवस्था हो जायगी । चूहो को मार डालने के कारण बिल्ली मार डालने योग्य होगी, बिल्ली को मारने के कारण कुत्ता मार डालने लायक साबित होगा; कुत्ते को मार डालने से भेड़िया मार डालने योग्य सिद्ध होगा और भेड़िया को भी मारने के कारण सिंह मार देने योग्य हो जायगा । सिंह को मार डालने की वजह से मनुष्य हिंसा का पात्र बन जायगा । मतलब यह है कि अगर आपने हिंसा को योग्य मानना शुरू कर दिया तो कही ठहरने का ठिकाना ही नही रह जायगा ।

(५७)

भाइयो ! जो किसी से उधार ले आएगा, उससे लेने के लिए भी वह आएगा। इसी प्रकार तुम किसी के प्राण लोगे

तो वह भी अवसर मिलने पर तुम्हारे प्राण लेगा। अगर तुम किसी के प्राण नही लोगे तो तुमसे कोई बदला लेने नहीं आएगा। किसी भी प्रकार का बदला न चुकाना पडे, ऐसी स्थिति प्राप्त हो जाना ही मोक्ष कहलाता है। बदला देने और लेने के लिए जन्म लेना पडता है। मोक्ष मे ऐसा कोई झगड़ा नही रहता। मोक्ष मे पूरी निराकुलता है।

(५८)

अ ज अगर कोई व्यक्ति बुरा है तो उसे सदा के लिए बुरा समझ लेना उचित नही है। पापी के पाप को भले घृणा की दृष्टि से देखा जाय, मगर पापी पर घृणा नही करनी चाहिए। कौन कह सकता है कि ऊपर से पापी प्रतीत होने वाले की अन्तरात्मा कितनी ऊची और सरल है! प्रभव चोर इसका उदाहरण है!

(५९)

संसार के भोगोपभोगों का त्याग न कर सको तो उनमें एकान्त लिप्त भी मत बनो। दया के मार्ग पर चलो। दया को ही अपने प्रत्येक कार्य की कसौटी बना कर व्यवहार करो। तुम्हारे जिस कार्य से दया का विरोध होता हो, उसे धर्म मत समझो। भगवती दया क चरणो मे अपना सर्वस्व बलिदान करो। यह पावन बलिदान आपके सौभाग्य के अक्षय भडार का मगलमय द्वार खोल देगा। तब आपको मालूम हो जायगा कि यह सौदा घाटे का सौदा नही है।

(६०)

भाइयों ! जो जैसा करेगा वैसा ही पायेगा। जैसे बीज बोयेगा, वैस फल चखने को मिलेगे। दया किये विना कुछ भी मिलने को नही है। अतएव प्राणियों पर दया करना अपने पर दया करना है। अतएव अपनी भलाई के लिए, अपने कल्याण के लिए प्राणियों पर दया करो।

(६१)

भाइयो ! किसी की रोजी पर लात मारना अच्छा नही है। यह बड़ा घोर और अधम कृत्य है। आजीविका ग्यारहवाँ प्राण गिना जाता है, क्योकि आजीविका के अभाव मे दसों प्राण खतरे मे पड़ जाते हैं !

(६२)

कोई आदमी रग-रूप में सुन्दर हो-छैल छबीला हो, पढ़ा लिखा हो, चलता पुर्जा हो अगर उसके दिल मे दया नही है तो जानवर का और उसका जन्म बराबर ही है।

(६३)

जो शराबी को शराब पीने से रोक रहा है वह शराबी का भला चाहता है। ऐसी स्थिति में वह हिंसा के पाप का भागी नहीं हो सकता। कोई अज्ञान बालक जहर की शीशी उठा कर पीने को उद्यत हुआ है और एक समझदार आदमी उसे पीने से रोक देता है तो वह पाप नही कर रहा है। इसी

प्रकार साधु गण झूठ बोलने वाले, चोरी करने वाले और व्यभिचार करने वाले को उपदेश देकर रोकते है, तो इसमे हिसा मानना उचित नही है।

(६४)

दया-माता ही वास्तव में संसार के समस्त प्राणियों की माता है, क्योकि दया के प्रताप से ही उनकी रक्षा हो रही है, उनका जीवन सुरक्षित बना हुआ है। जन्म देने वाली माता के हृदय मे भी दया होने के कारण वह अपनी सन्तान का पालन-पोषण करती है। अगर मानुषी माता मे से दया निकल जाय तो मानव-शिशु की क्या हालत हो जाय ? इस बात पर गहरा विचार करने से दया-माता की महिमा जल्दी समझ में आ जायगी और यह भी समझ मे आ जायगा कि वास्तव में दया ही प्राणी मात्र की असली माता है।

(६५)

दया-माता का स्मरण करने से सभी कष्टों का निवारण हो जाता है। दूसरे जीवो को सुख पहुंचाओगे तो स्वयं सुख पाओगे और यदि दूसरो को पीड़ा दोगे तो स्वयं पीड़ा के पात्र बनोगे। यह दया-माता का निर्णय है और तीन काल तथा तीन लोक मे, कभी कही बदल नही सकता।

(६६)

दया धर्म ही सच्चा धर्म है और दया बिना कोई भी धर्म, धर्म नही कहला सकता।

-: सत्य :-

(१)

संसार में जो सत्य है, वही आत्मा है। सत्य और आत्मा एक ही है। सत् उसे कहते है जिसका कभी नाश नहीं होता। अतएव आत्मा सत्य है और सत्य आत्मा है।

(२)

सत्य के बीज से, अन्तःकरण के प्रदेश में एक ऐसी प्रचण्ड शक्ति का उदय होता है जिसे पाकर मनुष्य अजेय और अप्रतिहत हो जाता है। सत्य के प्रबल प्रताप से इसी लोक में परम मंगल की प्राप्ति होती है।

(३)

संसार के सभी धर्म शास्त्रों में सत्य को ऊँचा स्थान दिया गया है। भिन्न-भिन्न धर्म और-और बातों मे भले मतभेद रखते है, किन्तु सत्य के विषय में किसी का मतभेद नही है। यह सत्य की सब से बड़ी महत्ता और विजय है।

(४)

सत्य के अभाव मे कोई भी धर्म नही टिक सकता। अन्यान्य धर्म अगर वृक्ष, डाली, टहनी और पत्ता है तो सत्य

को उन सब का मूल मानना होगा। जैसे मूल के उखड़ जाने पर वृक्ष धराशायी हो जाता है, उसी प्रकार सत्य के अभाव मे सभी धर्मो का अभाव हो जाता है।

(५)

झूठ बोलने वाला एक बार झूठ बोल कर अपना काम बनाने का प्रयत्न तो अवश्य करता है, परन्तु उसके हृदय मे खटका बना रहता है। वह अपने असत्य को छिपाने के लिए जाल रचता है और डरता रहता है कि कही मेरी पोल न खुल जाय ? उसे एक झूठ को छिपाने के लिए अनेक झूठ गढ़ने पड़ते है। उसकी आत्मा गिरती है। वह सदैव बेचैन रहता है, सशक रहता है और आप ही अपनी नजरो मे गिरा रहता है।

(६)

असत्य अविश्वास का मूल कारण है। जिसे लोग असत्य वादी समझ लेते उसका विश्वास नही करते। उसकी सच्ची बात भी झूठी समझी जाती है। असत्य खोटी खोटी वासनाओ का घर है और समृद्धि मे रुकावट डालने वाला है।

(७)

भाइयो ! असत् दोषारोपण करना बड़ा ही भयानक पाप है। जिसको झूठा कलक लगाया जाता है, विचार करो कि उसे कितनी मानसिक व्यथा होती होगी ? प्राण लेने वाला शत्रु एकदम प्राण ले लेता है, परन्तु कलक लगाने वाला, जिसे

कलंक लगाता है उसे आजीवन पीड़ा पहुंचाता है। यह कोई साधारण पाप नहीं है।

(८)

नाम रखने का उद्देश्य किसी के गुणों को प्रकट करना नही है, वरन् व्यवहार मे, पहचान में सुविधा पैदा करना है। अतएव दुबले पतले अधमरे आदमी के लिए नाहरसिह शब्द नाम के अनुसार शब्द प्रयोग करने से असत्य का दोप नहीं लगता है क्यों कि यह कथन नाम सत्य है।

(९)

शतरंज के मोहरों में राजा, वजीर, हाथी, ऊंट, घोड़ा और प्यादों की स्थापना कर ली जाती है। उन मोहरों को राजा, वजीर आदि शब्दों से कहते हैं। ऐसा कहना दूपित नही है, क्यों कि वह स्थापना सत्य है।

(१०)

किसी ने प्रशन किया—समुद्र कैसा है ? उत्तर दिया गया—पानी से भरे हुए कटोरा जैसा। यह कथन उपमासत्य है।

(११)

जैसे दो और दो चार होते हैं, यह ध्रुव सत्य था, है, और रहेगा, उसी प्रकार तीर्थकरों ने जो मार्ग बतलाया है वह भी ध्रुव सत्य है।

(१२)

लोगों का यह भ्रम मात्र है कि असत्य का सेवन करने से किसी प्रकार का लाभ हो सकता है। युधिष्ठिर अपने सत्य पर आरूढ़ रहे तो क्या महाभारत मे उन्हे विजय प्राप्त नही हुई ? अवश्य हुई।

(१३)

सत्य सदैव दबा नही रहता। वह एक न एक दिन अवश्य उभरता है। कोई भी मेघ सदा के लिए सूर्य को नही छिपा सकता। घना से घना कोहरा भी आखिर फटता है और सूयै अपने असली रूप मे चमकने लगता है, सत्य भी ऐसा ही है। वह कभी न कभी प्रकाश मे आये बिना नहीं रहता।

(१४)

हिसाकारी वचन सत्य की कोटि मे नही है।

(१५)

थोड़े समय के लिए भी जिसने असत्य या अब्रह्मचर्य का सेवन किया, उसने अपना जीवन मिट्टी में मिला लिया। क्या एक बार जहर खाने वाला मरता नही है ? अवश्य मरता है। इसी प्रकार एक बार सत्य का परित्याग करने वाला भी अपना धर्म गॅवा देता है।

(१६)

भाइयो ! सत्य भी बड़ी भारी चीज है। अगर सम्पूर्ण सत्य का आचरण न कर सको तो जितना कर सकते हो उतना करो। दुनियां मे कहावत है—नहाए जितनी गंगा। जितना बन पड़े उतना ही लाभ है। अतएव अगर एक देश से-आंशिक रूप से सत्य का आचरण कर सकते हो तो भी करो, मगर करो। अपने जीवन को सत्य से सर्वथा शून्य मत रहने दो। जितनी और जैसी करनी करोगे, उतना और वैसा ही फल पाओगे। जितना गुड़ डालोगे उतना ही मीठा होगा।

(१७)

दुकान को लोग गणेशजी की पेढ़ी या शिवजी की पेढ़ी कहते है, लेकिन कर्त्तव्य क्या करते है ? दुकान पर बैठे २ गप्पे मारते है, झूठा नामा लिखते है, गरीबों का गला काटते हैं। भोला भाला गरीब ले जाता है पांच और लिख लेते हैं पचास। अरे गपोड़ शंख ! नाम तो भगवान का रखता है और ऐसी अनीति करता है। तभी तो दुनिया सुखी नही होती। सचाई के बिना सुख कैसे मिल सकता है ?



-: अस्तेय :-

(१)

ईश्वर भक्त कभी चोरी नही कर सकता। चोरी छिपे-छिपे की जाती है। ईश्वर भक्त समझता है कि मै छिप कर कोई काम नही कर सकता। भगवान् सर्वदर्शी हैं। वे सब को देख रहे हैं। उनसे मेरी कोई प्रवृत्ति छिप ही नही सकती। अजी, चारी करने की बात जाने दीजिये, भक्त चोरी करने का सकल्प भी अपने मन मे नही कर सकता। भला जिसके चित मे ईश्वर का वास है, उसके चित मे चोरी करने की या और कोई भी पाप करने की भावना ही किस प्रकार उदित हो सकती है ? ईश्वर का भक्त सभी पापो से अलिप्त रहता हे।

(२)

अपने कर्त्तव्य को ईमानदारी के साथ अदा न करने वाला चोर कहलाता है। चाहे वह किसी भी जाति का हो, कोई भी धन्धा करता हो। चोर की कोई जात पांत नही होती जो चोरी करे वही चोर है। डाका डाले वही डाकू, रंडी के यहां जावे वही रंडीबाज और जो बुरा काम करता है वही बदमाश कहलाता है। इन सब दुर्गुणो का सबंध किसी जाति

से नहीं होता है। कई लोग ऊँची जाति मे उत्पन्न होकर भी चोर और बदमाश हो सकते है और कई नीची समझे जाने वाली कौम में जन्म लेकर भी प्रामाणिकता और नीति के साथ अपना निर्वाह करते है।

(३)

न्यायाधीश का कर्त्तव्य है कि वह छान बीन करके सच्चा न्याय दे—दूध का दूध पानी का पानी कर दे। इसके विपरीत अगर वह किसी के लिहाज में आकर, किसी के दवाव मे पड़कर लोभ लालच में फंसकर या रिश्वत लेकर अन्याय करता है, सच्चे को झूठा और झूठे को सच्चा ठहराता है तो वह चोर है वह अपने कर्त्तव्य का चोर है, धर्म का चोर है, सरकार का चोर है और प्रजा का चोर है। इसी प्रकार कोई दूसरा कर्मचारी भी अगर अपने वास्तविक कर्त्तव्य से गिरता है तो वह चोरी के अन्धे कुए मे गिरता है।

(४)

चोरी करके कमाया हुआ पैसा मोरी मे ही जाने वाला है। उससे आत्मा का भी हनन होता है। चोरी करने वाला व्यापारी अन्त तक अपनी साख कायम नही रख सकता। एक न एक दिन उसकी साख खत्म हो जाता है और व्यापारी की साख उठ जाना एक प्रकार से व्यापार उठ जाना है।



-: ब्रह्मचर्य :-

(१)

ब्रह्मचर्य का अर्थ केवल स्पर्शेन्द्रिय का संयम नही, वरन् समस्त इन्द्रियो का संयम है । इतना ही नही, किन्तु समस्त इन्द्रियो का सयमन करके ब्रह्म अर्थात् आत्मा में चर्या करना अर्थात् विचरना सच्चा ब्रह्मचर्य है । ब्रह्मचर्य की यह पराकाष्ठा प्राप्त करने के लिये स्पर्शनेन्द्रिय के सयम से शुरुआत करनी पड़ती है ।

(२)

आत्मा को आत्मिक गुणों में ही रमण कराना आत्मा के अतिरिक्त जितने भी पर-पदार्थ है उनमे रमण न करने देना उनकी ओर न जाने देना ब्रह्मचर्य कहलाता है ।

(३)

आत्मा के सुस्वाभाविक सुख के सामने नारी का सुख उपहासास्पद है और आत्मा के सौन्दर्य के आगे नारी का सौदर्य विद्रूप है ।

(४)

कामभोग विष से अधिक विषम हैं। विष की बात की जाय, विष को हाथ में लिया जाय, आंखों से देखा जाय या विष संबंधी बात कानों से सुनी जाय तो विष हानि नहीं पहुंचाता, लेकिन कामभोगों का विष इतना तीव्र होता है कि उनकी बात कहने-सुनने से, स्मरण करने और देखने से भी अपना प्रभाव डाले विना नही रहता। फिर और-और विषों का प्रभाव तो अधिक से अधिक वर्तमान जीवन को ही प्रभावित करता है, मगर भोगों का विष जन्म-जन्मान्तर तक आत्मा को प्रभावित करता है।

(५)

जब दिव्य कामभोग भी इच्छा की पूर्ति नहीं कर सकते तो फिर साधारण मानुषिक कामभोग क्या तृप्ति कर सकेंगे? भोगों की अभिलाषा भोग भोगने से उसी प्रकार बढ़ती जाती हैं, जिस प्रकार ईंधन झोंकने से आग बढ़ती ही चली जाती है। इन भोगों के अन्त में दुःख के सिवाय और क्या पल्ले पड़ता ह? तो क्या रक्खा है इन भोगों में! संसार के सभी पौद्गलिक पदार्थ आत्मा के लिए हितकारी नहीं हैं। थोड़े दिनो रह कर वे आत्मा को मूढ़ बना कर दूर हो जाते हैं।

(६)

ब्रह्मचर्य के अभाव मे मूल भूत प्राण शक्ति का ह्रास हो जाता है। तो बाहरी उपचार क्या काम आएंगे? दीपक में

तेल ही नही होगा तो लाख प्रयत्न करो, वह प्रदीप्त नही होगा। इसी प्रकार शरीर मे वीर्यशक्ति नही है तो कोई भी औषध, रसायन, भस्म आदि काम नही आ सकती इसके विपरीत यदि आपने अपने वीर्य की रक्षा की है तो आपको स्वतः नीरोगता प्राप्त होगी आपका जीवन आनन्द दायक होगा।

(७)

कामवासना आग है। इस आग की विशेषता यह है कि इसमे जल कर भी लोग जलन का अनुभव नही करते, बल्कि शान्ति समझते है। यह आग सबसे पहले प्राणी के विवेक को ही नष्ट करती ह। और जब उसका विवेक नष्ट हो जाता है तो फिर उसे हित-अहित का भान ही नही रहता।

(८)

जिसके हृदय मे काम-वासना उद्दीप्त होती है वह पुरुष आंखे रहते भी अन्धा और कान होते हुए भी बहिरा हो जाता है। उसे हिताहित का भान नही रहता।

(९ अ)

मनुष्य के मन मे जब दुर्वासना उत्पन्न होती ह तो बिगडते जरा भी देरी नही लगती। चित्त का विकार मनुष्य को अंधा कर देता है। उचित–अनुचित क्या है, नीति क्या है, अनीति क्या है, इत्यादि विचार ऐसे मनुष्य से दूर ही रहते है। कई राजा दासियो के भी दास बन जाते है और कई रानियां अपने

दासों की दासियां बन जाती हैं। वास्तव मे यह काम विकार बड़ा ही अनर्थकारी है।

(६ व)

उल्लू दिन में नही देखता और कौवा रात्रि मे नही देख सकता; किन्तु कामान्ध पुरुष उल्लू और कौवा से भी गया बीता होता है। उसे न रात को दिखाई देता है न दिन को दिखाई देना है। वह रात-दिन अंधा ही बना रहता है।

(१०)

कामवासना के कारण जिसका विवेक विलुप्त हो जाता है, वह विनय, शील, सन्तोष, भद्रता, लज्जाशीलता, कुलीनता आदि सभी को त्याग कर निर्लज्जता, उद्दण्डता आदि बुराइयों का शिकार हो जाता है। अपने पुरखाओं की कीर्ति को कलंकित करने मे संकोच नही करता।

(११)

जिसने ब्रह्मचर्य की महिमा नहीं समझी और इस कारण अपने वीर्य का दुरुपयोग किया, समझ लो उसने अपने हाथों से अपने सिर पर कुल्हाड़ा चला लिया। उसने अपने जीवन को भ्रष्ट और नष्ट कर डाला। वह अपनी आत्मा का भयानक शत्रु है। अपने देश और समाज को भी वह हानि पहुंचा रहा है। वह निर्वीर्य पुरुष निकम्मा है। वह जीता है तो भी मृतक के ही समान है।

(१२)

क्या आप उस मूर्ख मनुष्य को विवेकवान् समझेंगे जो बहुमूल्य इत्र को गटरों मे डाल देना चाहता है ? मनुष्य जन्म और ब्रह्मचर्य अनमोल रत्न है। उन्हे यों लुटा देना मूर्खता की पराकाष्ठा है।

(१३)

वीर्य का नाश करना जीवन का नाश करना है। और वीर्य की रक्षा करना जीवन की रक्षा करना है।

(१४)

काम-वासना समस्त दुर्गुणों का प्रतीक है और काम को जीत लेना समस्त विकारों को जीत लेने का चिह्न है। जिसन क़ाम को जीत लिया, उसने सभी दोषो को जीत लिया समझिए। वास्तव मे काम को जीतना बड़ा ही कठिन कार्य है।

(१५)

धर्म की आराधना की पहली शर्त विषय-वासना को जीतना है और विषय वासना मे काम वासना सबसे जबरदस्त है। इसे जीते विना चित्त मे निराकुलता नहीं उत्पन्न हो सकती। अतएव जिसे अपना जीवन सफल वनाना है, अपना भविप्य कल्याण-पूर्ण वनाना है, जिसे शान्ति की कामना है और जो असीम सुख का अभिलाषी है, उसे कामवासना पर विजय प्राप्त करनी ही चाहिए।

(१६)

नारी घी के घड़े के समान है और पुरुष तपे अगार के समान है। अतएव बुद्धिमान् पुरुष को चाहिये कि वह घृत और आग को एक जगह न रक्खे।

(१७)

जैसे गेहूँ के आटे में भूरा कोला रखने से उसका बन्ध नही होता अथवा चावलों के पास कच्चा नारियल रख देने से उसमें कीड़े पड़ जाते हैं, उसी प्रकार स्त्री और पुरुष अगर एक आसन पर बैठें तो उनका ब्रह्मचर्य नष्ट हो जाता है।

(१८)

पति-पत्नी के शब्द या हंसी–मजाक की बातें सुनने से मन में विकार उत्पन्न होने की पूरी संभावना रहती है। जैसे मेघ की गर्जना सुनने से मोर बोलने लगता है, उसी प्रकार काम–विकार संबंधी बातें सुनने से विकार जागृत होता है।

(१९)

जो स्त्री आदि के साथ एक मकान में रहता है अथवा स्त्रियो की चर्चा वार्ता करता है, उसका ब्रह्मचर्य बिगड़ जाने की पद-पद पर सम्भावना बनी रहती है। जहाँ ऐसी बातें हो, समझना चाहिये कि वहां खाली म्यान है, तलवार नहीं है। पुरुष के लिए स्त्री का संसर्ग और स्त्री के लिए पुरुष का सामीप्य सिवाय हानि के और कुछ उत्पन्न नहीं कर सकता।

(२०)

कोई कह सकता है कि स्त्रियों के विषय मे बातचीत करने मे क्या रक्खा है ? बाते करने से कैसे ब्रह्मचर्य विगड़ जायगा ? परन्तु ऐसी बात नही है। इमली या नीबू का नाम लेते ही मुह मे पानी भर आता है। इसी प्रकार स्त्रियों सबंधी बातचीत करने से मन ठिकाने नही रहता है।

(२१)

ब्रह्मचारी पुरुष, स्त्री के अंगोपांगों का अवलोकन न करे। कोई कह सकता है कि विचार तो चित्त में होता है, आँखो मे नही। फिर स्त्री के अंगोपांगों को अगर देख भी लिया जाय तो क्या हानि है ? इस शंका का समाधान यह हैं कि जैसे सूर्य की तरफ बार-बार देखने से आँखों की शक्ति का नाश होता है, उसी प्रकार स्त्रियों के अंगोपांगों को देखने से ब्रह्मचारी पुरुष के ब्रह्मचर्य का विनाश होता है।

(२२)

जैसे आग के स्पर्श से पांच हजार का लाल खाक हो गया लाल खराब हो गया-उसकी कोई कीमत नहीं रही, इसी प्रकार स्त्री के स्पर्श से संयमी भी खराब हो जाएँगे। आपके ब्रह्मचर्य का क्या मूल्य रह जायगा ?

(२३)

जैसे व्यापारी जहाज पर सवार होकर व्यापार के निमित्त समुद्र के परले पार जाता है, उसी प्रकार जो ब्रह्मचर्य रूपी जहाज में बैठेगा वह संसार रूपी समुद्र के परले पार जायगा।

(२४)

कामभोग शल्य के समान हैं। जैसे शरीर के भीतर चुभा हुआ शूल मार्मिक वेदना पहुँचाता है, उसी प्रकार यह कामभोग भी आत्मा को गहरी वेदना पहुंचाने वाले हैं।

(२५)

अगर माता-पिता ब्रह्मचर्य का ध्यान रक्खे तो बचपन मे बालकों को प्राय. दवा की आवश्यकता ही न रहे। उनको भी जल्दी बुढ़ापा नहीं आवे। क्योंकि वीर्य शरीर का राजा है। जिसका राजा ही बिगड़ जाय, उसकी प्रजा कब ठीक रह सकती है। इसी प्रकार ब्रह्मचर्य के विगड़ जाने पर शरीर भी बिगड़ जाता है। आज ब्रह्मचर्य की ओर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया जाता, इसी कारण नस्ल, निर्बल, निस्तेज, रुग्ण और अल्पायुष्क होती है।

(२६ अ)

जो लोग बलवर्धक और उन्मादकारी भोजन करते हैं और कभी तपस्या नहीं करते, वे अपने ब्रह्मचर्य की रक्षा नहीं कर सकते।

(२६ ब)

ब्रह्मचर्य की साधना का संबंध जैसे आंख और कान के साथ है, उसी प्रकार जीभ के साथ भी है। आंखों और कानों पर कितना ही नियत्रण क्यो न रक्खा जाय, अगर जीभ पर नियंत्रण न किया तो साधना किसी भी समय मिट्टी में मिल सकती है। पौष्टिक, मादक और उत्तेजक भोजन करने वाला ब्रह्मचर्य की आराधना नही कर सकता।

(२७)

ब्रह्मचारी को रूखा-सूखा भोजन भी परिमाण से अधिक नही खाना चाहिए। सेर की हँडिया मे सवा सेर भर दिया जाय तो फूटे बिना नही रहेगी।

(२८)

यदि किसी का मन सबल नहीं है तो वह वर्ष मे एक दिन छोड कर ब्रह्मचर्य पाले। यह भी नही बनता तो महीने मे एक दिन अपवाद रख कर ब्रह्मचर्य का पालन करो। अगर इतना भी न हो सके तो कफन सिरहाने रख कर सोओ। शरीर का राजा वीर्य है। अगर राजा बिगड़ गया या नष्ट हो गया तो प्रजा का पता लगाना ही कठिन है। शरीर का राजा बिगड़ जाता है तो फिर जल्दी ही लक्कड़ इकट्ठे करने पड़ते है।

(२६)

जो गृहस्थ रूखा-सूखा भोजन करते हैं, उनका भी चित्त ठिकाने नहीं रहता, ऐसी स्थिति में अगर साधु प्रतिदिन गरिष्ठ माल-मसाले खाएगा तो उसकी साधुता ठिकाने लगने में क्या कसर रह जाएगी ? किसी आदमी को त्रिदोष की बीमारी हो जाय और फिर उसे मिश्री तथा दूध पिला दिया जाय तो वह नीलाम ही बोल जायगा-मर जायगा, इसी प्रकार जो रोज माल खायगा, वह ब्रह्मचर्य से च्युत हो जायगा।

(३०)

जैसे पर्वत का समुद्र मे तिरना संभव नही, उसी प्रकार पौष्टिक भोजन करने वालो के लिए इन्द्रियों का निग्रह करना संभव नहीं। इन्द्रियों को प्रबल बनाने वाला, उन्माद उत्पन्न करने वाला, उत्तेजक भोजन विषय वासना की ओर प्रेरित करता है। ऐसा भोजन करके काम विजय करना संभव नहीं है।

(३१)

स्त्री अगर ब्रह्मचारी पुरुष के लिए विष के समान है तो ब्रह्मचारिणी स्त्री के लिये पुरुष भी विष के ही समान है। स्त्रियों को पुरुषों के सान्निध्य-संसर्ग से बचना चाहिए और ब्रह्मचर्य पालने के लिये पुरुषों को जो नियम बतलाये गये हैं, वे स्त्रियों के लिए भी समझना चाहिए। आशय यह है कि पुरुष भी कम मायावी नहीं हैं। हम तो दोनों के गन्द-दारे गीत गाते

है। हमें घूंस लेनी नही है, पैसे लेने नहीं हैं कि किसी की खुशामद करके व्याख्यान दे।

(३२)

जो मनुष्य ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहता है, उसे अपने रहन-सहन और खान-पान के प्रति विशेष सावधान रहना चाहिये। जीवन मे उसे सादगी धारण करनी चाहिए। बाल जमाना, सुगंधित साबुन लगाना, इत्र लगाना, सुन्दर वस्त्र-भूषण धारण करना और भांति-भांति का शृंगार करना यह सब कामदेव को निमंत्रण देने की ही तैयारी करना है। अतएव अपने मन को जीतने का प्रयत्न करना चाहिए। मन को जीते बिना विषय विकार को जीतना कठिन ही नही अशक्य भी है।

(३३)

काम रूप विकार स्वाभाविक नही है। वह आत्मा का सहज गुण नही है। पर पदार्थों के संयोग से ही इस विकार की उत्पत्ति होती है। जो विकार आत्मा की अपनी निर्बलता और भूल से उत्पन्न हुआ है, उसे आत्मा विनष्ट भी कर सकती है।

(३४)

जो मनुष्य शान्ति का इच्छुक है, कान्तिमान् बनना चाहता हैं, स्मरण शक्ति बढ़ाने की अभिलाषा रखता है, बुद्धि की वृद्धि चाहता है, शरीर को रोगो से बचाना चाहता है और

उत्तम सन्तान चाहता है उसे ब्रह्मचर्य रूप महान् धर्म का आचरण करना चाहिये।

(३५)

ब्रह्मचर्य से तन और मन बलवान् बनते हैं। ब्रह्मचर्य से आत्मा निर्मल होती है। ब्रह्मचर्य के प्रताप से सब प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। ब्रचह्मर्य बल, विद्या, बुद्धि, प्रतिभा, तेजस्विता, स्वस्थता, दीर्घायु और सुख प्रदान करने वाला है।

(३६)

ब्रह्मचर्य का पालन करने से अनेक भयंकर बीमारियां जैसे क्षय, तपेदिक आदि भी दूर हो जाती है और कामासक्ति की अधिकता से अनेक प्राणहारी रोगों का उद्‌भव होता है। सुजाक, गर्मी और प्रमेह आदि गंदी लज्जा जनक, जान लेने वाली और जिन्दगी को भार भूत एवं दुःखमय बनाने वाली बीमारियाँ वीर्य के अनुचित विनाश से उत्पन्न होती है।

(३७)

स्त्री या पुरुष, जो व्यभिचारी होता है प्रायः क्षय जैसे भयंकर राज-रोगों के शिकार बनते हैं। राजयक्ष्मा से बचने का सर्वोत्तम उपाय शरीर के राजा को-वीर्य की-रक्षा करना ही है। यदि राजा नहीं बचा तो बताओ प्रजा की क्या दुर्दशा होगी ?

(३८)

भाइयो ! जैसे ब्रह्मचर्य सब व्रतों मे उत्तम है, उसी प्रकार व्यभिचार सब पापो मे बड़ा है। इसके कई कारण है। उनमे से एक कारण यह भी है कि और-और पापो की तरह यह पाप तत्काल समाप्त नहीं हो जाता, किन्तु इनकी परम्परा लम्बी चली जाती है।

—: परस्त्री गमन :—

(१)

परायी स्त्री को भी जूठन की उपमा दी गई है। अतएव उस पर ललचाने वाले कुलीन जन नही हो सकते। और कुत्तो के समान नीच जन ही उसकी अभिलाषा करते है। परस्त्री-गमन भयानक अपराध और घोर पाप है। अनेक दु.खो का कारण है।

(२)

कहो कहाँ केसर और कहाँ विष्ठा ! मगर मक्खी का ऐसा स्वभाव है कि वह केसर के पास नही जाती। उसे विष्ठा ही प्यारी लगती है। इसी प्रकार जो स्त्री, अपने विवाहित पति को छोड़कर परपुरुष के पास जाती है, वह मानो केसर को छोड़कर विष्ठा पर जाने वाली, गन्दगी को पसन्द करने वाली मक्खी के समान है। यह बात पुरुष के लिए भी है। परस्त्री का सेवन करने वाला पुरुप जठन चाटने वाले कुत्ते के समान गर्हित है।

(३)

रावण क्या ढोल बजा कर सीता को ले गया था ? नहीं, वह भी छिप कर अकेले में ही ले गया था। फिर भी बात छिपी नहीं रही। इसी प्रकार लाख प्रयत्न करने पर भी तुम्हारा पाप छिपा नहीं करेगा। वह एक दिन अवश्य प्रकट होगा और तुम्हे निन्दा एवं घृणा का पात्र बना देगा।

(४)

रावण कितना शक्तिशाली और तेजस्वी वीर पुरुष था। परस्त्री की स्वीकृति के बिना उसका सेवन न करने की उसकी प्रतिज्ञा थी। फिर भी परस्त्री का अपहरण करने मात्र से उसे कितनी हानि उठानी पडी ? उसे राज्य से हाथ धोने पड़े, प्राणों का परित्याग करना पड़ा, कुल का क्षय हो गया ! जब रावण जैसे शक्तिशाली पुरुष की भी यह दुर्दशा हो सकती है तो साधारण मनुष्य का तो कहना ही क्या है ?

(५)

वीर रावण का विनाश क्यों हुआ ? उसने परस्त्री गमन नही किया, सिर्फ परस्त्रीगमन करना चाहा था। अब आप विचार करो कि जिस पाप का सेवन करने की इच्छा मात्र से रावण जैसे महान् सम्राट् को अपने राज्य से ही नहीं, अपने प्राणों से भी हाथ धोना पड़ा, उस पाप के सेवन से साधारण मनुष्य की क्या हालत न होगी ?

(६)

जो परस्त्री लम्पट है और वेश्यागामी है, वे भी रावण को पत्थर मारने दौड़ते है, मगर यह नही सोचते कि जिस दोष के कारण रावण की यह दशा हुई, वही दोष मुझ मे और भी ज्यादा है तो मेरी क्या दशा होगी।

(७)

रावण का पुतला जलाने वाले ! तू जरा अपनी तरफ तो देख ! तू स्वयं रावण का बाप बना बैठा है और रावण को जलाने चला है ! अरे, पहले तू अपनी दुर्वासनाओं को जला, जो तुझे रावण से भी गया-बीता बना रही है, पतित कर रही है और तब रावण के विषय मे विचार करना !

(८)

सचाई सूर्य के समान है जो मिथ्या के मेघों में सदा के लिए छिपने को नही है। वह तो अन्ततः प्रकट होने का ही है। सीता के सतीत्व पर कलंक लगाया गया था किन्तु क्या वह कलक अंत तक स्थिर रह सका ? नही। वह आग को पानी बना कर प्रकट हो गया और उस सती को कलक लगाने वाले ही कलकित हुए।

(९)

बदचलन औरत को राक्षसी की उपमा दी गई है। उसके दोनो स्तन दो फोड़े है। जो ऐसी स्त्रियो के फदे मे फँस

जाता है, उसकी बड़ी दुर्दशा हो जाती है। आरंभ मे वे अपनी मोहक चेष्टाओं द्वारा पुरुष को अपनी ओर आकृष्ट करती है और जब पुरुष उनके चंगुल में फँस जाता है तो फिर उससे गुलाम जैसा व्यवहार करती है। ऐसे पुरुष के लिए जीवन भारभूत हो जाता है।

(१०)

वेश्या का अधर क्या है ? लुच्चो और गुन्डो के थूकने का ठीकरा है। जो अपनी प्रतिष्ठा को समझता है, वह भूल कर भी इस गलत रास्ते पर नही जाता !

(११)

जिन लोगों को वेश्यागमन की गंदी आदत हो जाती है, वे गर्मी, सुजाक आदि भीषण व्याधियों के शिकार हो जाते है और गल-गल करके मरते है। वे जीवन भर भयंकर यातनाएँ भुगतते है और दूसरे लोग उनके प्रति सहानुभूति के दो शब्द तक नहीं कहते ! परलोक में जाने पर तपी हुई तांबे की पुतलियों से उन्हे आलिंगन कराया जाता है।

(१२)

परस्त्री की कामना करने वाला, परस्त्री की ओर विकार भरी दृष्टि से देखने वाला, परस्त्री को देखकर कुचेष्टाएँ करने वाला और परस्त्री को भ्रष्ट करने वाला पुरुष

घोर पातकी है। वह अपनी ही प्रतिष्ठा को कलंकित नहीं करता, वरन् अपने कुल और परिवार को भी कलक लगाता है। वह अपने पुरखाओं के निर्मल यश को भी कलंकित करता है। वह गदगी का कीड़ा सब की नजरो मे गिर जाता है। सभी उससे घृणा करते हैं। उसके परिवार के लोग भी उसका मुख देखना पसद नही करते। वह जहाँ कही जाता है, अपमान और तिरस्कार का पात्र बनता है।



~: अपरिग्रह :~

(१)

परिग्रह घोर अनर्थकारी है। यह मनुष्य से अकरणीय कार्य करा लेता है। अनाचरणीय का आचरण करा देता है। परिग्रह की लालसा के वशीभूत होकर मनुष्य कितना गिर जाता है और किस प्रकार मानव से दानव बन जाता है, यह बात किसी से और आपसे छिपी नहीं है। यह परिग्रह ही तो है जो मनुष्य को चोर बनाता है, डकैत बनाता है, लुटेरा बनाता है और घोर से घोर अकृत्य करवाता है।

(२)

जिस परिग्रह को प्राप्त करने की कामना मात्र से आत्मा में अतीव कलुषित विचारों का उदय होता है, मनुष्य अपनी मनुष्यता से भी पतित हो जाता है और अपने जीवन के प्रशस्त अंगों को भूल जाता है वह परिग्रह कल्याणकारी किस प्रकार हो सकता है? कदापि नहीं।

(३)

जैसे पत्थर की नाव भारी होने के कारण समुद्र में डूब जाती है, उसी प्रकार यह प्राणी परिग्रह के भार से भारी

होता है, वह ससार सागर मे डूब जाता है। अतएव जिसे डूबने की इच्छा न हो, उसे चाहिये कि वह परिग्रह का परित्याग करे।

(४)

निश्चिन्त बनने के लिए निष्परिग्रह बनना चाहिए।



-: कषाय :-

(१)

ईर्षा, द्वेष, लोभ आदि कषायों से प्रेरित होकर कितनी ही क्रिया क्यों न की जाय, आत्मा का कल्याण नहीं हो सकता। कितना ही लम्बा तिलक लगाओ और मुहपत्ती बांधो, किन्तु आखिर तो कषायों को जीतना ही काम आयगा।

(२)

तुम ईश्वर से मिलना चाहो और झूठ, कपट, लोभ, लालच, मोह-ममता आदि को छोड़ना भी न चाहो, यह नहीं हो सकेगा। दो घोड़ों पर एक साथ सवारी नहीं हो सकती।

(३)

जिसके अन्तःकरण मे कषाय की अग्नि प्रज्वलित होती है, उसका विवेक दग्ध हो जाता है। वह यथार्थ वस्तु स्थिति का विचार नहीं कर सकता। वह अपने दोषों को न देखकर दूसरे के ही दोषों का विचार करता है।

(४)

मोक्ष का बाधक कषाय भाव ही है। राग का शोषण पीछे जाता छठे गुणस्थान मे और मैत्री का शोषण पीछे जाता

सातवे गुणस्थान में हो सो बात नही है। मैले कपडे पहनने मात्र से भी गुणस्थान नही चढता। गुणस्थान चढ़ने के लिए कषाय को जीतने की आवश्यकता है। भुने चने या बोर का आटा खाने वाला भी अगर लोलुपता के साथ खाता है तो वह पाप का भागी होता है ओर यदि बादाम का सीरा विरक्त भाव से खाता है तो वह पाप का भागी नही होता।

(५)

कषायो की ज्यों-ज्यो उपशान्ति होती है, त्यो-त्यों गुणस्थानों की उच्चता प्राप्त होती है। ससार भर के साहित्य को कंठस्थ कर लेने पर भी जिसने अपने कषाय को बिलकुल नही जीता, वह एक भी गुणस्थान ऊँचा नहीं चढ सकता। इसके विपरीत अगर ज्ञान विशेष प्राप्त नही हुआ है, फिर भी कपाय-विजय का गुण प्राप्त हो गया है तो गुणस्थान-श्रेणी ऊँची चढ जायगी।

(६)

तत्त्वज्ञान के साथ कषाय का उपशम होने से ही आनन्द होता है। कोई बेले-बेले पारणा करे परन्तु कपायो का निग्रह न करे तो वह सच्चा तपस्वी नही कहला सकता। इसी प्रकार तत्त्वज्ञान पा लेने पर भी अगर कोई कषायो को नही शान्त कर पाता है तो वह सच्चा तत्त्वज्ञानी नही है।

-: कषाय :-

(१)

ईर्षा, द्वेष, लोभ आदि कषायो से प्रेरित होकर कितनी ही क्रिया क्यों न की जाय, आत्मा का कल्याण नही हो सकता। कितना ही लम्बा तिलक लगाओ और मुहपत्ती बांधो, किन्तु आखिर तो कषायों को जीतना ही काम आयगा।

(२)

तुम ईश्वर से मिलना चाहो और झूठ, कपट, लोभ, लालच, मोह-ममता आदि को छोड़ना भी न चाहो, यह नही हो सकेगा। दो घोड़ों पर एक साथ सवारी नही हो सकती।

(३)

जिसके अन्त:करण में कषाय की अग्नि प्रज्वलित होती है, उसका विवेक दग्ध हो जाता है। वह यथार्थ वस्तु स्थिति का विचार नही कर सकता। वह अपने दोषो को न देखकर दूसरे के ही दोषों का विचार करता है।

(४)

मोक्ष का बाधक कषाय भाव ही है। दाख का धोवन पीने वाला छठे गुणस्थान में और मेथी का धोवन पीने वाला

सातवे गुणस्थान में हो सो बात नही है। मैले कपडे पहनने मात्र से भी गुणस्थान नही चढता। गुणस्थान चढ़ने के लिए कषाय को जीतने की आवश्यकता है। भुने चने या बोर का आटा खाने वाला भी अगर लोलुपता के साथ खाता है तो वह पाप का भागी होता है ओर यदि बादाम का सीरा विरक्त भाव से खाता है तो वह पाप का भागी नही होता।

(५)

कषायो की ज्यों–ज्यो उपशान्ति होती है, त्यो–त्यों गुणस्थानों की उच्चता प्राप्त होती है। ससार भर के साहित्य को कठस्थ कर लेने पर भी जिसने अपने कषाय को बिलकुल नही जीता, वह एक भी गुणस्थान ऊँचा नही चढ सकता। इसके विपरीत अगर ज्ञान विशेष प्राप्त नही हुआ है, फिर भी कषाय-विजय का गुण प्राप्त हो गया है तो गुणस्थान-श्रेणी ऊँची चढ जायगी।

(६)

तत्त्वज्ञान के साथ कषाय का उपशम होने से ही आनन्द होता है। कोई बेले-बेले पारणा करे परन्तु कषायो का निग्रह न करे तो वह सच्चा तपस्वी नही कहला सकता। इसी प्रकार तत्त्वज्ञान पा लेने पर भी अगर कोई कषायो को नही शान्त कर पाता है तो वह सच्चा तत्त्वज्ञानी नही है।

(७)

हे मुमुक्षुओ ! जो कोई भी क्रिया करो, उसमे कषाय को जितने का ध्येय प्रधान रूप से रक्खो। कषाय को न जीत सकोगे तो कितनी ही तपस्या करो, कितने ही मैले कपडों से रहो, आत्मा को मुक्ति नही मिलेगी अतएव कपाय के कचरे को हटाओ।

(८)

तपस्या आदि कोई भी ब्राह्य क्रिया तभी सार्थक होती है जब वह कपाय विजय में सहायक हो। अतएव जा कुछ भी करो उसमें कषाय विजय ही प्रधान होना चाहिए। तपस्या करो तो शरीर पर मे ममता कम करने के लिए, कर्मो की निर्जरा करने के लिए और अप्रमत्त अवस्था प्राप्त करने के लिए करो; लोक पूजा प्रतिष्ठा, यश आदि के लिए मत करो। ऐसा करोगे तो कष्ट भी उठाओगे और आत्मिक प्रयोजन को भी पूरा नहीं कर पाओगे। बल्कि कषाय भाव मे उलटी वृद्धि होगी। मोक्ष और भी दूर चला जायगा।

(९)

कपायों की उपशान्ति ही आत्मा के उत्थान का चिन्ह है। ज्ञान उच्च श्रेणी का हो, फिर भी अगर कपायों का उप-शम न हुआ तो ज्ञान व्यर्थ है। आत्मा की पवित्रता का प्रधान आधार निष्कषायवृत्ति ही है।

(१०)

जैसे मदिरा का असर होने पर प्राणी बेभान हो जाता है, उसी प्रकार कषाय का आवेश होने पर भी प्राणी अपने आपको भूल जाता है। उसे अपना भला-बुरा भी नही सूझता और ऐसे-ऐसे काम कर गुजरता है कि उसे सदैव पछताना पड़ता है।

(११)

बोतल मे मदिरा भी है और ऊपर से डाट लगा है। उसे लेकर कोई हजार वार गगाजी मे स्नान कराए क्या मदिरा पवित्र हो जाएगी ? क्या वह गगाजल से पूत मदिरा पेय हो गई ? इसी प्रकार जिसका अन्तरग पाप और कषाय से भरा हुआ है, वह ऊपर से कितना ही साफ–सुथरा रहे, बगुले की तरह झक्–सफेद दिखाई दे, किन्तु वास्तव मे तो रहेगा, अपावन ही !

(१२)

समझदार आदमी विवेकवान होता है तो मजे मे घर अथवा दुकान जाता है किन्तु जो शराब पी लेता और नशे मे होता है, वह बीच मे कांटों मे ही धड़ाम से गिर पड़ता है, इसी प्रकार कषाय और प्रमाद मे पड़ कर जीव दुर्गति मे जा पड़ता है, वस्तुत. कर्म से ही सुख–दु ख की प्राप्ति होती है। अतएव मनुष्य का प्रथम और प्रधान कर्त्तव्य एवं उद्देश्य यही होना चाहिए कि वह कर्मो को नष्ट करने का प्रयत्न करे।

(१३)

जो जितना कषायों का त्याग करता है, वह उतना ही अधिक धर्मनिष्ठ है, फिर भले ही वह किसी वेष मे क्यों न रहा हो।

(१४)

जिसने कषायों को मारा उसने जन्म मरण को मारा।



—. क्रोध :—

(१)

क्रोधी मनुष्य स्वयं जलता है और दूसरो को भी जलाता है। सर्व प्रथम स्वय सन्ताप करता है, जलन के कारण व्याकुल होता है, फिर दूसरो को सताप पहुँचाने का प्रयत्न करता है। उसके प्रयत्न से दूसरो को दुःख हो या न हो, दूसरे का अहित हो भी सकता है और कभी नही भी होता, मगर क्रोधी आप स्वय अपना अहित अवश्य कर लेता है। अतएव भगवान का आदेश है कि अगर तुम सन्ताप से बचना चाहते हो, जलन तुम्हे प्रिय नही है शान्ति पसन्द है तो क्रोध को अपने काबू मे रक्खो। क्षमा भावना को बढ़ाओ।

(२)

क्रोध बहुत बुरा दुर्गुण है। यह अकेला ही दुर्गुण समस्त सद्गुणो को नष्ट करने वाला है। यह नरक का द्वार है। जिसने इस दरवाजे मे प्रवेश किया, उसे नरक पहुँचते देर नही लगती।

(३)

क्रोधी का खून सूख जाता है। उसका शरीर रुक्ष हो जाता है। क्रोधी स्वय दुःखी होकर घर के सब लोगों को

दु:खी बना देता है। उसका विवेक नष्ट हो जाता है। वह चिड़चिड़ा हो जाता है। वह कुछ खाता पीता है, उसका रस क्रोध की आग में भस्म हो जाता है।

(४)

भाइयो ! क्रोध की आग वह आग है जो पहले अपने आश्रय को ही जलाती है। जिस चित मे क्रोध की ज्वालाएं दहकती है, वह चित्त ही पहले पहल जलता है। क्रोध की ज्वालाएँ दूसरे को जलाएँ और कदाचित् न भी जलाए; पर अपने उत्पत्ति स्थान को तो जला कर राख कर ही डालती है।

(५)

आग भी जलाती है, और क्रोध भी जलाता है, किन्तु दोनों से उत्पन्न होने वाली जलन मे महान् अन्तर है। आग ऊपर-ऊपर से चमडी आदि को जलाती है, मगर क्रोध अन्तरंग को समाप्त करता और जलाता है। क्रोध की अग्नि बड़ी जबर्दस्त होती है।

(६)

क्रोध को चाण्डाल की उपमा दी जाती है। वास्तव मे देखा जाय तो असली चाण्डाल क्रोध ही है। जिसके चित्त मे क्रोध का वास है वह स्वय चाण्डाल है।

(७)

क्रोधी मनुष्य जब क्रोध के आवेश मे आता है, तो उसमे एक प्रकार का पागलपन आ जाता है। पागल आदमी जैसे अपने हित–अहित का विचार नही कर सकता, उसी प्रकार क्रोधी भी। यही कारण है कि वह कोई भी अनर्थ करने मे सकोच नही करता।

(८)

क्रोध से जो पागल होता है, वह सत् असत् का विचार करने मे असमर्थ हो जाता है। क्रोध की आग मे उसकी विचार शक्ति भस्म हो जाती है। वह न बोलने योग्य भाषा बोलता है, न करने योग्य कार्य करता है और न करने योग्य सकल्प करता है। वह क्रोध की आग मे स्वयं भी जलता है और दूसरों को भी जलाता है।

(९)

क्रोध से तपस्वी की तपस्या छिन्न भिन्न हो जाती है। जैसे हलुवे मे कपूर की धूनी दे दी जाय, कलाकन्द मे संखिया डाल दिया जाय तो बताओ क्या वह खाने योग्य रहेगा ? उसी प्रकार तप और त्याग मे यदि क्रोध का मेल हो जाय तो सारी तपस्या व्यर्थ हो जाती है।

(१०)

क्रोध सर्वत्र अनर्थ का ही कारण होता है वह देश में, जाति में, समाज में, परिवार में और मित्र मंडली में अशान्ति पैदा कर देता है, फूट डाल देता है और अव्यवस्था उत्पन्न करके उसका विनाश कर डालता है। अतएव शास्त्रों में यही उपदेश दिया गया है कि क्रोध को त्याग देना चाहिए। क्रोध धर्म का, आत्म-कल्याण का विनाशक है और अत्यन्त भयानक है।

(११)

मनुष्य जब क्रोध में आता है तो भद्दे शब्दों का प्रयोग करता है और फिर उसे उन शब्दों के लिए लज्जित होना पड़ता है। बनिया मांस नहीं खाता लेकिन क्रोध में आकर बोलता है कि 'तुझे कच्चा ही खा जाऊँगा'। ऐसी भाषा सभ्य और धार्मिक पुरुषों को कभी नहीं बोलनी चाहिए। कदाचित् मन पर काबू न रहा हो और आवेश में ऐसे शब्द निकल गये हों तो प्रायश्चित लेकर शुद्धि कर लेनी चाहिए और जिससे ऐसे शब्द कहे हों उससे क्षमा माग लेनी चाहिए।

(१२)

जैसे पागल मनुष्य को न अपने हित-अहित का भान रहता है और न दूसरों के हिताहित का ख्याल रहता है। उसी प्रकार क्रुद्ध मनुष्य भी भलाई-बुराई का भान भूल जाता है। क्रोध के कारण कभी-कभी आत्म-हत्या तक कर डालते हैं।

(१३)

जिस प्रकार पानी की तह मे जमे हुए कीचड को हाथ डालकर हिला दिया जाय तो निर्मल जल भी मैला हो जाता है; इसी प्रकार क्रोध के कारण समझदार आदमी भी क्षण भर मे मूर्ख बन जाता है।

(१४)

क्रोध के आवेश मे मनुष्य अधा हो जाता है। वह पागलपन की स्थिति मे पहुँच जाता है। उसका मस्तिष्क शून्य हो जाता है। ऐसे स्थिति मे ही कोई-कोई आत्मघात तक कर लेता है। अतएव क्रोध बडा ही भयकर शत्रु है।



-: मान :-

(१)

चिउँटी के जब पर आते है तो लोग कहते है यह पर नही मरने की निशानी है, यमराज का नोटिस है। जब किसी आदमी मे घमण्ड का भाव अत्यधिक बढ गया हो और वह घमण्ड के कारण फूल रहा हो तो समझो कि इसकी मौत इसके सिर पर चक्कर काट रही है।

(२)

अभिमान पाप का मूल है। अभिमान उन्नति और प्रगति के पथ का एक जबर्दस्त रोड़ा है। अभिमान मनुष्य को अन्धा बना देता है। जो अभिमान स अन्धा बन जाता है उसे अपने अवगुण और दूसरे के सद्गुण नही दिखाई देते। अभिमानी मनुष्य उचित-अनुचित का भेद भूल जाता है। विनय को नष्ट करने वाला अभिमान ही है। अतएव अपना कल्याण चाहते हो तो अभिमान का त्याग करो। बड़ो-बूढ़ों का आदर करो।

(३)

यह अहंकार बड़ा भारी दुर्गुण है। नाना रूपों में यह मनुष्य को अपने अधीन बनाता है। कलदार बढे और अभिमान

बढा, बुद्धि खिली कि अभिमान भी खिला। पाच आदमी पूछने लगे कि घमण्ड बढ गया। जरा सा गुण आता है तो दुर्गुण भी उसके साथ भगा आता है। किसी को भला आदमी समझ कर मुखिया बनाया और वही काटने दौड पड़ा।

(४

गधेडा चिल्लाता है–टी–भू–टी–भू अर्थात् जो हूँ सो मै हूँ। मगर कौन उसे बड़प्पन देता है ? इसी प्रकार जो मनुष्य अहकार मे चूर रहता है और अपने सामने किसी को कुछ गिनता ही नही है, उसे सम्यग्बोध की प्राप्ति होना कठिन है।

(५)

अभिमान पतन की ओर ले जाने वाला घोर शत्रु है। वह विनाश का सृष्टा है। उसके चगुल से अपनी रक्षा करो-अपने आपको बचाओ। निरहकार वृत्ति अभ्युदय की सीढी है। ज्यो–ज्यो नम्रता धारण करोगे, ऊँचे उठोगे। शास्त्रो का कथन है कि नम्रता धारण करने से उच्च गोत्र का बध होता है और अहकार करने से नीच गोत्र कर्म बधता है।

(६)

अभिमानी पुरुष दूसरों के सद्गुणो को भी दुर्गुणो के रूप मे देखता है और अपने दुर्गुणो को भी सद्गुण समझता है। फल यह होता है कि वह सद्गुणे से वचित रहता है और दुर्गुणो का भंडार बन जाता है।

(७)

अभिमान एक प्रकार की बीमारी है जो समस्त गुणो को कृश और दुर्बल बना देती है। अभिमानी के समस्त गुण, अवगुण बन जाते है। वह आदर का नही, घृणा का पात्र बनता है। इसके विरूद्ध विनीत पुरुष आदर–सन्मान के योग्य समझा जाता हैं! अतएव अपने मन मे भूलकर भी कभी अभिमान मत आने दो।

(८)

भाइयो ! अभिमान मनुष्य का एक प्रबल शत्रु है। जो अभिमानी है वह स्वभावतः अपने राई जितने गुणो को पर्वत के बराबर और दूसरो के पर्वत के बराबर गुणो को राई के बराबर समझता है। उसके ऐसा समझने से दूसरो की कोई हानि नही होती, उसीकी हानि होती है क्योकि उसके सद्‌गुणो का विकास नही हो सकता। वह न विद्या प्राप्त कर पाता है न विनय प्राप्त कर सकता है, और न दूसरे सद्‌गुण ही पाता है। अभिमानी को लोग हिकारत की निगाह से देखते हैं। उन्नति मे जितना बाधक अभिमान है, उतना और कोई नही। अतएव अभिमान को त्याग देना ही श्रेयस्कर है।

(९)

वास्तविक दृष्टि से देखोगे तो आपको अवश्य ऐसा जान पड़ेगा कि अहकार करने योग्य वस्तु ही आपके पास नहीं

है। दुनियां मे एक से एक बढकर सद्‌गुणी पडे है, श्रीमन्त है, बलवान है, विद्यवान है क्या तुम समझते हो कि तुम्हारा स्थान विश्व मे अद्वितीय है ? कदाचित ऐसा है तो भी अहकार के लिए कोई कारण नही है। क्योंकि जिस चीज के लिए तुम अहकार करते हो, वह स्थायी नही है और तुम्हारी नही है।

(१०)

अहंकार संसार-सागर मे गोते खिलाने वाला है। शरीर सुन्दर हुआ, पैसा कुछ ज्यादा इकट्ठा हो गया, बी. ए. या एम. ए. की परीक्षा उत्तीर्ण कर ली, दुकान मे नफा होने लगा या ग्राहक अधिक आने लगे, प्रेसीडेन्ट साहब बन गये बस अहंकार आ जाता है। यह सब अहकार आने के कारण है। मगर सत्वशाली मनुष्य वही है जो अहकार की सामग्री विद्यमान होने पर भी—विद्या, सम्पत्ति, बल, रूप आदि होने पर भी अहकार नही करता।

(११)

मैं रूप का या बल का अभिमान करु ? मगर वास्तविक दृष्टि से देखा जाय तो मैं अरूपी हूँ। रूप पुद्‌गल का स्वभाव है, आत्मा का स्वभाव ही नही है। रूप मेरा विकार है और मेरा कलक है। मेरे लिये जो कलंक की चीज है, उस पर अभिमान कैसे करू ? बल आत्मा का गुण है और वह अनन्त है। उस अनन्त बल में से असंख्यातवां हिस्सा भी आज मुझे प्राप्त नही है। फिर अभिमान कैसा ?

(१२)

कुल और जाति का अभिमान करना मूर्खता है । अनादि काल से ससार मे भ्रमण करते-करते इस जीव ने सभी जातियो में और सभी कुलो में अनन्त अनन्त वार जन्म धारण किया है । अनन्त वार यह चाण्डाल कुल मे जन्म ले चुका है। फिर जाति और कुल का अभिमाम किस लिए ? और दर-असल न तो कोई जाति ऊँची होती है और न नीची होती है। उच्चता और नीचता का आधार कर्त्तव्य है । ऊँचा कर्त्तव्य करने वाला ऊँचा और नीचा कर्त्तव्य करने वाला नीचा होता है ।

(१३)

तुम्हें ऐश्वर्य मिला है तो उसके अभिमान में ऐंठना ठीक नही है । कितना ऐश्वर्य है तुम्हारे पास ? चक्रवर्त्ती वासुदेव और वड़े २ सम्राटों के ऐश्वर्य के आगे तुम्हारे ऐश्वर्य की क्या गिनती ? वे भी खाली हाथ चले गए तो तुम क्या लेकर जाने वाले हो ?

(१४)

क्या तू जवानी का घमंड करता है ? जवानी का घमड करने से पहले बूढों से तो पूछ ले । वह भी एक दिन तेरे ही समान जवान थे । पर आज उनकी क्या अवस्था है ! तू समझता है कि वही बूढे हुए है और तू सदा जवान बना ही रहेगा कभी बूढ़ा नही होगा जवानी तो समुद्र की हिलोर है आई और चली गई । उस पर इतराना कैसा ?

(१५)

जब तक मल शरीर के भीतर है शरीर में शक्ति है। सारा मल निकल जाये तो हाथ पैर भी नही हिल सकते, आँख भी नही खुल सकती; इस प्रकार जिसकी जिन्दगी मल पर निर्भर है उसे अभिमान करना क्या शोभा देता है ?

(१६)

जरा विचार कीजिए कि आपके पास अभिमान करने योग्य क्या है ? आपका शरीर इतना अशुचि है कि ससार मे दूसरी कोई वस्तु इतनी अशुचि नही। जिसमे से निरन्तर अशुचि पदार्थ बहते रहते है, जो क्षण भर मे निर्जीव बन कर घोर बदबू देने लगता है और फिर जिसे प्रिय से प्रिय स्वजन भी शीघ्र से शीघ्र आग मे झौंक देने को तैयार हो जाते है उस शरीर पर अभिमान !

(१७)

भाइयो ! पुण्य के योग से तुम्हें सुन्दर, सबल और स्वस्थ शरीर मिल गया है, तो अभिमान मत करो। शरीर मे अभिमान करने की बात है भी क्या ? अगर शरीर की असलियत का विचार किया जाय तो यही नतीजा निकलता है कि देह अपवित्र है, अपावन है, कम से कम अभिमान करने योग्य तो नही ! देखो न, कैसा मल का पुतला है यह शरीर ! नाक मे से रेंट झरता है, आँखों मे से गीड निकलता है, मुँह मे से कफ तथा थूक निकलता है, एक तरफ से मल और एक

तरफ से मूत्र बहता है ! भला ऐसी चीज का अभिमान क्या ? जब तक इसमें चेतनदेव विराजमान है, तभी तक यह काम का है !

(१८)

जो ज्ञानवान होता है वह जानता है कि मैं किस चीज पर अभिमान करु ? अभिमान करने योग्य मेरे पास क्या है ? धन-दौलत मेरे पास है, तो क्या हुआ, दुनियाँ मे एक से बढ़कर एक धनवान है । इसके सामने मेरी सम्पदा तुच्छ है । उस पर मै क्या अभिमान करुं ! जिस धन-दौलत पर मैं अभिमान करता हूँ उसे कीचड़ के समान समझ कर ज्ञानी पुरुषो ने त्याग दिया है । उसे ठुकरा दिया है ।

(१९)

यह कदापि न सोचिये कि कीर्ति की कामना का परित्याग कर देने से आपको कीर्ति नही मिलेगी । कीर्ति आपके सदाचार से और सद्‌गुणों से प्राप्त होगी । अगर आपका आचरण ऊँचा है, अगर आपके जीवन मे सद्‌गुणों की सुगंध है, अगर आपके कार्यो में नीति की परम उज्ज्वलता है, अगर आप धर्म के द्वारा प्रदर्शित पथ पर ही चलने को उद्यत रहते है तो कीर्ति आपके पास भागी-भागी आयेगी । आप न चाहेंगे तो भी आयेगी ।

(२०)

सच तो यह है कि जो वस्तु आपसे भिन्न हो सकती है उसे अपनी कहना अज्ञान है। अपनी वस्तु अपने से कभी अलग नही होती। इस कसौटी पर कसकर देखो कि क्या तुम्हारा है और क्या नही है? जब आपको यह ज्ञान हो जायगा कि हमारा क्या है और क्या नही हैं, तो भौतिक पदार्थो का अभिमान करना छूट जायगा। उस समय आप सोचेगे कि जो हमारी है ही नही, उसका अभिमान कैसा?

(२१)

जैसे वालक के हाथ मे पडी हुई तलवार उसके लिए घातक होती है, उसी प्रकार अभिमानी और अविनीत पुरुष का ज्ञान भी उसके लिए हानिप्रद सिद्ध होता है। उसके लिए अर्थसाधक और कल्याणकारी शास्त्र भी अनर्थकर और अकल्याणकारी साबित होता है। वह शास्त्र भी शस्त्र बन जाता है। अतएव प्रत्येक कल्याण कामी साधक का सर्वप्रथम कर्त्तव्य यही है कि वह विनीत बने, अपने धर्म-गुरु, ज्ञानदाता एव उपकारी के प्रति विनम्र होकर बने।

(२२)

सब अपना-अपना भाग्य लेकर आये है। मनुष्य वृथा ही अहंकार रखता है कि मेरे पुरुषार्थ से, मेरे प्रताप से, मेरी कमाई से या मेरी सहायता से दूसरो का भरण-पोषण हो

रहा है। चलती गाड़ी के नीचे-नीचे एल कुता चल रहा था। वह समझता था कि गाड़ी को मै ही चला रहा हूँ। यही दशा अधिकांश गृहस्थो की है। वे समझते है कि गृहस्थी की गाड़ी हमारे बल पर चल रही है ! वास्तव मे कोई किसी के भाग्य को पलट नही सकता।

(२३-क)

अभिमानी आदमी न स्वय सही बात सोच सकता है और न दूसरों की बात मानता है। वह तुच्छ होता हुआ भी अपने आपको महान् समझता है। एक मच्छर भैसे के सीग पर बैठ गया। वह भैसे से कहने लगा—क्यो रे पाडे ? मेरा वजन तो तुझे असह्य नही लगता ? भैसा कहने लगा—वाह रे मच्छर क्या तू भी किसी गिनती मे है ? इसी तरह गाड़ी के नीचे र कुत्ता चलता है। वह समझता है कि गाडी मेरे सहारे चल रही है मैं ही गाड़ी का सारा बोझ उठाये हूँ। उसे मालूम नही है कि गाड़ी मे बैल जुते है और वह गाड़ी को चला रहे है।

(२३-ख)

कठोर भूमि मे अंकुर नही उग सकते। यही बात मनुष्य के हृदय की है। मनुष्य का हृदय जब कोमल होगा—उसकी अभिमान रूपी कठोरता हट जायगी, तभी उसमे धर्म का अंकुर उग सकेगा। अभिमान को छोडे बिना आत्मा उन्नत नही बन सकती। जो जीव अभिमान का त्याग करेगा वही सुखी बनेगा। वह दूसरे के सद्गुणो को ग्रहण करके सद्गुणी बन सकेगा।

(२४)

बडे सदा बडप्पन का ही विचार करते है। वे छोटों के मुकाबिले मे छोटे नही बन जाते। एक कुत्ता बोला–मै बडा जबर्दस्त हूँ। उससे पूछा गया–तुम किस बात मे बडे हो ? उसने उत्तर दिया–मै दुनियाँ को भौकता हूँ, लेकिन मुझे कोई नही भौकता ! उससे कहा गया–जनाब, दुनियाँ आप जैसी नही है; इसलिए नही भौकती। आपको वही भौकेगा जो आप सरीखा होगा। इसलिए आप अपनी विजय का भले ही घमन्ड करे मगर दुनियाँ आपका जानती है।

(२५)

मानी यह नही सोचता कि दूसरो की मेरे विषय मे क्या सम्मति है ? अहकारी मनुष्य अपने आपको चाहे हिमालय से भी बड़ा समझले, मगर दूसरे लोग तुच्छ या क्षुद्र ही समझते है। अहकारी आदर चाहता है किन्तु उसे घृणा मिलती है। आदर तो विनयवान् को प्राप्त होता है।

(२६)

देखो बालक के दिल में अहंभाव नही होता वह नही समझता कि मैं भी कुछ हूँ, तो वह बड़े-बड़े राजाओ के रनवास मे भी बेरोक टोक जा सकता है। उसके सब कसूर माफ है। मगर जो अपने को ही सब कुछ समझता है उसका सिर रहना भी कठिन है।

(२७)

तुम्हारे सामने से दो रास्ते जाते है। उनमे एक रास्ता पतन का है और दूसरा उत्थान का। अगर उत्थान के मार्ग पर चलोगे तो सर्वोत्कृष्ट देव विमान–सर्वार्थसिद्ध मे पहुंच जाओगे और फिर एक भव करके मुक्ति प्राप्त कर लोगे पतन के रास्ते पर चलने से नरक और निगोद मे जाना पडता है। 'मैं कुछ नही हूँ', यह उत्थान का मार्ग है और 'मै ही सब कुछ हूँ, जो हूँ मै ही हूँ', यह पतन का मार्ग है।

(२८)

जब तक आपके दिल मे दया है और दिमाग में गरीबी का भाव है, तभी तक ईश्वर आपके साथ है। जिस क्षण आपके चित्त मे अहंकार का अंकुर उत्पन्न हो जायगा और आप समझेगे कि जो कुछ हूँ, मै ही हूँ, उसी क्षण ईश्वर आपका साथ छोड़ देगा।

(२९)

जो मनुष्य प्रतिष्ठा या पूजी बढने पर भी समभाव में रहता है, वही उन्नति करता है। जो जरासा उन्नत होते ही आसमान मे उछलने लग जाता है उसकी उन्नति तो रुक जाती है। वह अवनति के गहरे गर्त्त में भी गिरे बिना नहीं रहता।

(३०)

जहां मान है वहीं अपमान है। ज्ञान लगाकर देखोगे तो पता चलेगा कि जहा अभिमान है, वहा ईश्वर नहीं है।

(३१)

अपने मुंह अपनी प्रशंसा करना एक प्रकार की मूर्खता है। वह प्रशसा समझदारों के सामने अप्रशसा रूप हो जाती है। अपने मुंह मियां मिट्ठू बनने वाला घृणा की दृष्टि से देखा जाता है।

(३२)

जहाँ अभिमान है वहा विनय नही और जहाँ विनय नहीं वहा विवेक नही, बुद्धि नही, नम्रता नही, मृदुता नही, गुण ग्राहकता नहीं। इस प्रकार विचार करने से विदित होगा कि अभिमान प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में सब सद्‌गुणों को नष्ट करने वाला है। वह अनेक अनर्थों का मूल है।



-: विनय :-

(१)

विनय अखण्ड सुखस्वरूप मुक्ति को प्रदान करता है. विनय से सब प्रकार की श्री प्राप्त होती है, विनय से प्रीति की उत्पत्ति होती है और विनय से मति अर्थात् ज्ञान का लाभ होता है।

(२)

भाइयों, नम्रता बड़ी भारी चीज है। नम्रता विनय है और विनय तपस्या है। तपस्या से कर्मों की निर्जरा होती है। निर्जरा होने पर कर्म हट जाते है और आत्मा विशुद्ध हो जाती है। आत्मा की विशुद्धि होने पर केवल ज्ञान और केवल दर्शन प्रकट होते है। इसलिये नम्रता बड़ी भारी चीज है।

(३)

किसी भी प्रकार की खेती करने के लिए पहले जमीन को कोमल बनाने की आवश्यकता होती है। उसी प्रकार गुण को प्राप्त करने के लिए विनय की आवश्यकता होती है।

(४)

अगर आप अपना कल्याण चाहते हैं और गुणवान् बनना चाहते है तो विनय को ग्रहण कीजिये। विनय मगर धर्म

है। उससे इस भव मे भी अनेक लाभ होते है और परभव मे भी महान कल्याण होता है।

(५)

ज्ञान का फल निरभिमानता है, अभिमानी होना नहीं। जिसने श्रुतज्ञान प्राप्त किया है, वह ज्ञान की असीमता को भली-भाँति समझ लेता है। कहा जाता है कि श्रुतज्ञान की अपेक्षा अनन्त गुणा अधिक निर्मल केवल ज्ञान है। उसकी तुलना मे मेरा-अधिक से अधिक ज्ञान भी नगण्य है। फिर अभिमान किस बिरते पर किया जाय ?

(६)

जैसे मूल के उखड़ जाने पर वृक्ष-खड़ा नही रह सकता, उसी प्रकार विनय के बिना धर्म स्थिर नही रह सकता। विनीत पुरुष सम्पत्ति का अधिकारी होता है और अविनीत आपत्तियो मे घिरा रहता है।

(७)

विनय-धर्म आत्मा मे मृदुता उत्पन्न करता है। आत्मा की मृदुता अन्य समस्त सद्गुणो को खीच लाती है। अतएव मार्दव (विनय) भाव को अपनाओ। अभिमान को त्यागो। अभिमानी व्यक्ति सद्गुणो से वचित रहता हे और दूसरो की दृष्टि मे तिरस्कार एव घृणा का पात्र बनता है।

(८)

लोहा कितना कठोर होता है। एक मोहर के बदले बहुत-सा लोहा खरीदा जा सकता है। पर जब वह नरम होता है तब उससे औजार बनाये जाते है और एक-एक औजार हजारों की कीमत का बन जाता है। यह मृदुता का ही प्रभाव है।

(९)

नम्रता वह वशीकरण है कि दुश्मन को भी मित्र बना लेती है। पाषाण हृदय को भी पिघला देती है। देखो ना, पत्थर कितना कठोर होता है। उसमें यदि नख गड़ाया जाय तो वह टूट जायगा, लेकिन पत्थर का कुछ नहीं बिगड़ेगा। मगर रस्सी कितनी मुलायम होती है। प्रतिदिन उसकी रगड़ लगने से पत्थर में भी खड्डे पड़ जाते हैं। वास्तव में नम्रता और कोमलता बड़ी काम की चीज है। वह जीवन का बढ़िया शृंगार है, आभूषण है। उससे जीवन चमक उठता है।

(१०)

सिर कौन झुकाएगा? जिसमें गुरुता होगी, महत्ता होगी और साथ ही जो अपने को कुछ नहीं समझेगा। जो अपने को कुछ नहीं समझेगा, वही सब कुछ समझ जायगा और जो अपने आपको सब कुछ समझेगा, वह कुछ भी नहीं समझा जायगा! वह अपने को भले बड़ा समझे परन्तु लोग उसे तुच्छ समझेंगे।

(११)

आम के वृक्ष मे जब फल लगते है तो झुक जाता है, नम जाता है। इसी तरह इमली आदि के फल वाले वृक्ष नम जाते है। मगर आकडा नही नमता है और कदाचित नम जाता है तो टुट जाता है। आशय यह है कि जिसमे क्षुद्रता है, टुच्चापन है, वह नमना नही जानता। नमेगा तो योग्य ही नमेगा। विनय बडे आदमियो का लक्षण है और अभिमान तुच्छ व्यक्तियो का लक्षण है। नमने से आदमी बडा माना जाता है।

(१२)

जैसे जड़ उखड जाने पर सम्पूर्ण वृक्ष धराशायी हो जाता है उसी प्रकार विनय के अभाव मे कोई भी धर्म नही टिक सकता।

(१३)

अगर तुम्हारा अन्त करण विनय से विभूषित होगा तो उसमे धर्म का मधुर फल देने वाला अंकुर अपने आप ही अकुरित हो जायगा।

(१४)

धर्म मे नम्रता धारण करने से मोक्ष मिलता है और संसार–व्यवहार मे नम्रता धारण करने से जीवन मे नष्ट नही होता है। रेल्वे की मुसाफिरी मे नम्रता दिखलाने से "जगह

मिल जाती है । अकड़ने वालों को धक्के खाने पड़ते हैं, उनका सामान फेंक दिया जाता है ।

(१५)

जो नमता है वह लायक समझा जाता है । अतएव अगर कोई कहता है कि हम क्यों नमे ? तो उसे यही उत्तर दिया जा सकता है कि अगर लायक बनना हो तो नमो ।

(१६)

उपकार करने वाले तो फिर भी मिल जायेंगे, मगर उपकार करके अभिमान न करने वाले विरले ही होते हैं । अधिकांश लोग तो तोला भर उपकार करके मन भर एहसान जतलाते हैं ! ऐसे लोगों के परोपकार की कीमत तुच्छ रह जाती है । वास्तव में वही व्यक्ति श्रेष्ठ और धर्मिष्ठ है, जो दूसरे पर दया करके भी नम्रतापूर्वक रहता है, अभिमान नहीं करता और पर दया को स्व-दया ही समझता है ।

(१७)

भाइयो ! विनय जाति सम्पन्नता और कुलसम्पन्नता का लक्षण है । जिसकी जाति और जिसका कुल उत्तम और सुसंस्कारों से सम्पन्न होगा, उसमें सहज ही विनयभाव उत्पन्न हो जायगा । यहाँ जाति का अर्थ ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि नहीं है और न ओसवाल, अग्रवाल, परवार आदि ही है । शास्त्रों में इस प्रकार के जातिवाद को कोई महत्त्व नहीं दिया गया है ।

जाति का अर्थ है—माता का पक्ष। जिसका मातृपक्ष शुद्ध होगा सुसंस्कृत होगा और धार्मिक होगा, उसकी सन्तति भी नम्र होगी और वही जातिसम्पन्न कहलाएगा। वही त्यागप्रत्याख्यान लेकर भली-भाँति निभाएगा।

(१८)

कुल का अर्थ है पितृपक्ष। जिसका पिता शुद्ध होगा, अच्छे संस्कारों से युक्त होगा, उसका पुत्र धर्म की जो बात पकड़ेगा, उसे पार लगाएगा। राजा हरिश्चन्द्र ने चाण्डाल की जघन्य चाकरी करना स्वीकार किया किन्तु अपने धर्म को नहीं छोड़ा। इस प्रकार की कुलीनता जिसमे होती है, वह विनयवान् होता है।

(१९)

पुत्र को पिता पर, लघुभ्राता को ज्येष्ठ भ्राता पर, इसी प्रकार प्रत्येक छोटे को बडे के प्रति विनयभाव रखना चाहिए। ऐसा करने से गार्हस्थ जीवन आनन्दमय, शांतिमय, रसमय और सुखमय बनता है। विनयवान् के जीवन का विकास होता है और विनय विहीन का विकास अवरुद्ध हो जाता है।

(२०)

विनय के विना इस लोक में भी सुख-शांति नही मिलती। जिस कुटुम्ब में पुत्र पिता के प्रति और माता के

प्रति विनय भाव रखता है. प्रत्येक छोटा अपने से बड़े के सामने विनम्रता पूर्ण व्यवहार करता है, उस, कुटुम्ब मे आनन्द-मगल रहता है। स्नेह का मधुर रस बरसता है। बहू, सासू का विनय करेगी तो वह जब स्वय सासू बनेगी तो उसकी बहू भी उसके प्रति विनय युक्त व्यवहार करेगी।

(२१)

देखो ! रजकण हल्के होने से उड़कर रईसों के सिर पर भी पहुंच जाते है, लेकिन पत्थर कठोर होने से ठोकर खाते रहते है।

(२२)

जैसे पानी नीचे की ओर ही बहता है, ऊपर की ओर नही, उसी प्रकार गुण विनयशील व्यक्ति मे ही आते है। अभिमान के कारण जिसकी गर्दन ऊँची बनी रहती है, उसमे गुण नहीं आ सकते।

(२३)

कपड़ा कही से थोड़ा सा-फट जाय और उसी समय सॉध लिया जाय तो अधिक फटने नहीं पायगा। अगर लापर-वाही रखी तो वह फटता ही चला जाता है और पहनने के काम का नही रहता। यही हाल अविनीत शिष्य का होता है। अतएव विनय धर्म को अंगीकार करके अविनय से दूर होना चाहिए।

(७४)

जैसे सपूत बेटा बाप की भक्ति मे और भली बहू सासू की भक्ति मे उद्यत रहती है, उसी प्रकार चेले को गुरु की भक्ति मे तत्पर रहना चाहिए। इससे दोनो की आत्मा को शान्ति लाभ होता है। गुरु को समझना चाहिए कि चेला मेरे संयम मे सहायक है, आधारभूत है, साता पहुँचाने वाला है, और चेले को समझना चाहिए कि गुरु महाराज मुझे अज्ञान के अन्धकार मे से निकालकर लोकोत्तर प्रकाश देने वाले है। मोक्ष का मार्ग दिखलाने वाले हैं। इस प्रकार विचार कर व्यवहार करने से दोनों का ही कल्याण होता है।

(७५)

नाक कितनी ही ऊँची क्यो न हो, ललाट से तो नीची ही रहेगी। इसी प्रकार चेला कितना ही बड़ा क्यो न हो जाय, गुरु से तो नीचा ही रहेगा। वह तपस्वी है, त्यागी है यह ठीक है, फिर भी वह गुरु से ऊँचा नही हो गया है।

(७६)

जब गुरु के चरणो मे भक्ति पूर्वक मस्तक झुकाया जाता है तो मस्तक से समस्त पापो की पोटली नीचे गिर जाती है। सिर झुकाने पर मस्तक पर रक्खी हुई पोटली का गिर पड़ना स्वाभाविक ही है। मस्तक नम्र करना अपना भार दूर करना है। इसके विरूद्ध, जो लोग गुरु के समक्ष अकड़ कर खड़े रहते है, उनके सिर पर पापों की पोटली रक्खी ही रह जायगी। वह नीचे नही पड़ेगी।

—: क्षमा :—

(१)

क्षमा दुनिया में बड़ी चीज है। उससे इहलोक भी सुधरता है और परलोक भी सुधरता है। जिसके घर में क्षमा धर्म की प्रतिष्ठा होगी, उसके घर में शान्ति रहेगी और अलग-अलग चूल्हे नहीं जलेंगे। अलग-अलग चूल्हों के साथ कुटुम्बीजनों के दिल भी जला करते हैं, इसका कारण क्षमा का न होना ही है।

(२)

अगर आपके हाथ में क्षमा की ठंडी तलवार है तो दुष्ट से दुष्ट जीव भी आपका कुछ बिगाड़ नहीं कर सकता। पानी में आग पड़ जायगी, तो वह पानी को जला नहीं सकेगी, बल्कि स्वयं ही बुझ जायगी।

(३)

क्षमा आत्मा का बख्तर है। जिसने इस बख्तर को धारण कर लिया उसका कोई कुछ बिगाड़ नहीं कर सकता। विरोधियों के वाग्बाण उस पर असर नहीं कर सकते, प्रहार उस पर निरर्थक साबित होते हैं। उसका चित्त किसी भी आघात से क्षुब्ध नहीं होता। विरोधी झल्लाता है, चिल्लाता

है, बकवाद करता है, और आघात करता है, पर क्षमावीर पुरुष उसके सामने मुस्किराता है। वह अपनी सरल और निर्दोष मुस्किराहट से उसके समस्त प्रयत्नो को बेकार बना देता है।

(४)

क्षमा–शीतलता मे बडी शक्ति है। शत्रु कितना ही गर्म होकर क्यों न आया हो, कितनी ही वचन रूपी चिनगारियाँ छोड रहा हो और क्रोध की आग से तमतमा रहा हो, अगर सामने वाला शीतलता पकड़ ले, अर्थात् शान्ति धारण कर ले तो उसे शान्त होना पड़ता है।

(५)

भाइयो ! बिजली कड़क कर नदी या समुद्र में पडती है, मगर उससे कुछ भी बिगाड़ नही होता। वह स्वय बुझ जाती है और खत्म हो जाती है इसी प्रकार क्षमाधारी व्यक्ति के समक्ष क्रोध निष्फल हो जाता है।

(६)

जिसका अन्त करण क्षमा मे विभूषित होता है, उसकी कीर्ति सारे ससार मे फैल जाती है। वह अपने आनन्द के लिए ही क्षमा का सेवन करता है, कीर्ति की कामना से प्रेरित होकर नही, फिर भी उसकी कीर्ति फैल ही जाती है। फूल अपनी सुगन्ध फैलाना नही चाहता, फिर भी अगर उसमे सुगन्ध है तो वह बिना फैले कैसे रह सकती है ?

(७)

आग से आग शान्त नहीं होती, खून से खून साफ नहीं होता, क्रोध से क्रोध शान्त नहीं होता। आग को शान्त करने के लिए खून को धोने के लिए पानी की आवश्यकता है। क्रोध को उपशान्त करने के लिए क्षमा चाहिये।

(८)

क्षमा की प्रबल शक्ति के सामने दूसरी कोई भी शक्ति नही टिक सकती। जैसे पानी में गिरी हुई आग अपने आप ही नष्ट हो जाती है, उसी प्रकार क्षमा के सामने दुर्जनता-क्रोध आदि दुर्भाव-भी स्वत. नष्ट हो जाते है।

(९)

बात-बात में कुपित हो जाने वाला, गुरुजनों की जरा-सी कठोर वाणी को सुनते ही आग उगलने वाला और क्रोध की आग में स्वयं जलने तथा दूसरों को जलाने वाला शिक्षा के योग्य नही है। अतएव जो क्रोधरहित होता है जिसका अन्तःकरण शान्त रहता है वही शिक्षा पा सकता है।

(१०)

क्रोध कर आप भी आग बबूला हो गया और नागे के सामने नागा बनने की नीति अंगीकार की तो उसका भी फजीता होगा और आपका भी फजीता होगा ! वह क्रोधी है और आप भी क्रोधी हो जाएंगे तो दोनों मे क्या अन्तर रह

जायगा ? उसके समान बन जाने पर भी आपको कोई लाभ नही होगा ? आपकी आत्मा तो कषाय से कलुषित हो ही जायगी।

(११)

देखो, दु ख सहे बिना सुख नही मिलता है। बच्चियों के कान और नाक छेदते समय उन्हे कष्ट होता है, मगर बाद मे जब हजारो की लागत के लौंग पहनती है तो उन्ही को ही आनन्द आता है अतएव भाइयो, प्रयत्न करो कि तुम्हारे जीवन मे क्षमा का गुण उत्तरोत्तर बढता चला जाय।

(१२)

भाइयो ! गाली देने वाला अगर नीच है तो उसके बदले चार गालियाँ देने वाला चौगुना नीच क्यो नही गिना जायगा ? वास्तव मे वही ऊँचा और बड़ा है जो कटुक वचनो को शान्ति के साथ सहन कर लेता है।

(१३)

जिसने क्षमा रूपी तलवार अपने हाथ मे लेली है, शत्रु दुर्जन उसका कुछ भी बिगाड़ नही कर सकते। पानी मे फैंकी हुई आग, पानी को क्या जलाएगी, वह स्वयं ही बुझ जाएगी !



-: माया :-

(१)

भाइयो ! माया की शक्ति अद्भुत है। जिसके पास माया आ जाती है वह, नीति-अनीति की बात को भुला देता है। संपदा मनुष्य को घमंडी बना देती है। अकसर सम्पत्तिमान् लोग सहानुभूति से हीन, अकड़बाज और कठोर चित्त हो जाते है। सम्पत्ति में कुछ ऐसा रुखापन होता है जो हृदय को शुष्क बना देता है-सरस हृदय को भी नीरस बना देता है।

(२)

मायाचारी ऊपर से शान्त सा दिखलाई देता है, परन्तु उसके मन में कषाय का ज्वालामुखी भभकता रहता है। उसे स्वयं को शान्ति नही, निराकुलता नही। जिस आत्मा में शान्ति नहीं, निराकुलता नहीं उसे सुख की प्राप्ति हो ही कैसे सकती है। इस प्रकार मायाचारी मनुष्य अपना जीवन दुख-मय आकुलता पूर्ण और अशान्त बना लेता है। उसका आगामी भव भी घोर क्लेश मे व्यतीत होता है, क्योंकि माया अधो-गति मे ले जाती है।

(३)

बहुत से लोग इस भ्रम मे रहते है कि हमने छल कपट करके धन कमाया है, परन्तु छल कपट से धन नही मिलता। धन और दूसरी सुख सामग्री पुण्य के योग से मिलती है। इसलिए छल कपट छोड़कर पुण्य का उपार्जन करो।

(४)

जो आदमी मकान का बहुत किराया दे और बच्चों को खूब मिठाई खिलावे, उससे सावधान रहना चाहिए। समझ लो कि वह धोखा देगा। धूर्त्त लोग मीठा बोलकर गजब कर डालते है। दगावाज जो न करे सो थोड़ा है।

(५)

माया मनुष्यो को गधे की तरह दुलत्ती झाड़ती है। जब लक्ष्मी आती है तो कमर पर ऐसी कस कर ऐसी कस कर लात लगाती है कि मनुष्य की छाती आगे निकल आती है। इसीलिए तो सम्पत्ति शाली सीना फुलाकर अकड़ता हुआ सा चलता है। और जब वह जाने लगती है तो उस फूली हुई छाती पर लात मारती है। इसी कारण लक्ष्मी के चले जाने पर लोग झुक जाते है, उनकी छाती भीतर की ओर घुस जाती है।

(६)

परमात्मा के दरबार मे तो उन्ही की पहुँच होगी जो भीतर बाहर से एक से शुद्ध और पवित्र होंगे। जो हृदय से

अपने कर्तव्य-अकर्तव्य का भान नही रहता। लोभी अपने मित्रों के साथ भी धोखा और विश्वासघात करने से नही चूकता।

(५)

जिसके अन्तःकरण मे लोभ रूपी पिशाच प्रवेश कर गया है, उसके लिए कोई भी जघन्य कृत्य कठिन नही है वह अपने माता पिता की हत्या कर सकता हे अपने पुत्र और मित्र की घात कर सकता है, वह स्वामी के प्राण ले सकता है, यहां तक कि अपने सहोदर भाई की जान भी लेने से नही चूकता।

(६)

लालची मनुष्य केवल धन-दौलत को ही देखता है। उस धन को प्राप्त करने में और उसको प्राप्त कर लेने के फल स्वरूप कितनी विपत्ति झेलनी पड़ेगी, इस बात को वह जरा भी नही देखता। बिलाव दूध को ही देखता है, दूध के पास जाने पर लाठी के होने वाले प्रहार की ओर से वह आंखे मीच लेता है।

(७)

लोभ से क्रोध उत्पन्न होता है, क्रोध से द्रोह पैदा होता है और द्रोह के प्रभाव से नरक मे जाना पड़ता है। विचक्षण मनुष्य भी लोभ के कारण मूर्ख बन जाता है।

(८)

लोभी मनुष्य सुख का स्वाद लेना नहीं जानता। वह दुखों को भोगने और पापो का उपार्जन करने के लिए ही जीवित रहता ह।

(९)

लोभ से सब पापो मे प्रवृति होती है। जितना लोभ करोगे उतनी ही गरीबों के गले पर छुरी फेरोगे ! सौ हजार–पतियो को गरीब बना कर एक लखपति बनता है ! लखपति बन कर जिसने गरीबो की सहायता नहीं की, वह उस सचित किये धन का क्या करेगा ? छाती पर बांध कर परलोक में ले जाएगा ? चक्रवर्ती की असाधारण ऋद्धि भी जब यही पड़ी रह जाती है तब, ऐ श्रीमन्त ! तेरी लक्ष्मी कैसे तेरे साथ जाएगी ?

(१०)

हे लोभी यह आसमान से बाते करने वाली हवेलियां यही रह जायगी। सोना तिजोरियो मे धरा रह जायगा, जवाहरात डिब्बो में भरा रह जायगा। तुझे जब चार जने उठा कर जाएँगे तव केवल एक चादर तेरे उपर डालदी जाएगी तेरे शरीर पर के वस्त्र और आभूषण सब उतार लिए जायेंगे। तुझे नगा कर के विदा किया जायगा।

(११)

क्रोध प्रीति का नाशक है, मान विनय भाव का विनाश करता है, मायाचार से मैत्री मटियामेट हो जाती है। इस

प्रकार इन तीन पापों से एक–एक ही सद्गुण नष्ट होता है, परन्तु–लोभ–लालच से तो सर्वनाश हो जाता है।

(१२)

ज्यों ज्यों लाभ होता जाता है त्यों त्यों लोभ बढता जाता है। असल बात तो यह है कि लाभ से ही लोभ बढता है। लोभ वृद्धि का कारण लाभ है। अतएव कारण की अधिकता होने पर कार्य की अधिकता होना स्वाभाविक है।

(१३)

क्रोध से प्रीति का नाश होता है। मान से विनय का नाश होता है, माया से मित्रता का नाश होता है, परन्तु लोभ से सभी कुछ नष्ट हो जाता है। वह तमाम अच्छाइयो पर पानी फेर देता है।

(१४)

समग्र ससार लोभ से अभिभूत है। लोभ के कारण ही समस्त पापो का आचरण किया जाता है। लोभ पाप का बाप है। मनुष्य की वास्तविक आवश्यकताएँ कितनी है? उसका छोटासा शरीर है और छोटासा पेट है। शरीर ढँकने और पेट भरने के लिए संसार भर की संपत्ति की आवश्यकता नही है। करोड़ो और लाखों की सम्पत्ति भी नही चाहिए। पेट के लिए सुबह शाम चार रोटियां ही बस है। थोड़े से वस्त्र से ही काम चल सकता है। अधिक संचय न यहाँ काम आता है, न परलोक मे साथ जाता है। यह एक ऐसी बात है कि उसे सिद्ध करने की आवश्यकता नही।

--: तृष्णा :--

(१)

जैसे आकाश का कही और कभी अन्त नही है उसी प्रकार तृष्णा का भी कही अन्त नही है।

(२)

समुद्र का छोर है पर तृष्णा का छोर नही है।

(३)

अगर आप दु.खों की जड को तलाश करते चलेंगे तो मालूम होगा कि वह जड़ असन्तोष ही है। अधिकांश लोग असंतोष के कारण ही दुखी देखे जाते हैं। मनुष्य को अपना जीवन निर्वाह करने के लिए कितना चाहिए ? वह पेट में कितना अन्न खा सकता है और कितने कपडे लपेट सकता है ? जितने की आवश्यकता होती है, उतना प्राय. सभी को मिल जाता है। फिर भी उनके अन्त:कारण मे असन्तोष की आग दहकती रहती है। वे उस आग मे अपने जीवन की सम्पूर्ण शान्ति और निराकुलता को स्वाह कर देते है। "आवश्यकता है कन की और तृष्णा है मन की"। सोने को चार हाथ जमीन चाहिए, पर विशाल महल बनवा लेने पर भी सन्तोष नही।

एक महल बन गया है तो दूसरे के मंसूबे किये जा रहे है। हजारों है तो लाखों की तृष्णा लगी है और लाखो है तो करोड़ों की कामना हो रही है। निश्चित है कि इतनी सम्पदा उपयोग मे नहीं आ सकती फिर भी सन्तोष कहाँ है ?

(४)

धन की मर्यादा नहो करोगे तो परिणाम अच्छा नही निकलेगा। लकड़िया झौंके जाओ और आग बढती चली जायगी। ईंधन डालते जाने से आग कभी शान्त नही हो सकती। तृष्णा भी आग है। उसमे ज्यो–ज्यो धन का ईंधन झौंकते जाओगे, वह बढती ही जायगी। वह विकलता पैदा करेगी। चैन नही लेने देगी। तो भाई ऐसे धन से क्या लाभ हुआ ? इस धन ने तुम्हे क्या सुख दिया ? इसीलिए मै कहता हूँ कि धन की मर्यादा कर लो। न करोगे तो तृष्णा की आग में झुलसते जाओगे, शान्ति नही पाओगे और अपने जीवन को बर्बाद कर लोगे।

(५)

बाहर की अग्नि से अधिक जबर्दस्त अग्नि तृष्णा की है। स्थूल अग्नि से तो स्थूल पदार्थ ही जलते है परन्तु तृष्णा की आग में आत्मा भी जलती है। तृष्णा की आग व्यापक है। सारा ससार इस आग मे जल रहा है। भगवान् के नाम–कीर्त्तन से वह आग भी शान्त हो जाती है।

(६)

जैसे आग से आग शान्त नही होती । उसी प्रकार से धन से धन की तृष्णा शान्त नही होती । जैसे ईंधन झोंकते जाने से आग बढती ही चली जाती है, उसी प्रकार धन को प्राप्त करने से धन की इच्छा भी बढती ही जाती है ।

(७)

भाइयो ! जैसे आग को शान्त करने के लिये पानी अपेक्षित है, उसी प्रकार तृष्णा की आग को बुझाने के लिये सन्तोष धारण करने की आवश्यकता है, भगवान् ने निर्देशन किया है कि परिग्रह को कम करोगे और अपनी इच्छा पर नियत्रण करोगे तभी यह आग शान्त हो सकती है । इच्छाओ की पूर्ति करने का प्रयास करोगे तो यह आग शान्त होने के बदले बढ़ती ही चली जायगी ।

(८)

जो हजारो का मालिक है वह लाखो का स्वामी बनना चाहता है और जो लाखो का स्वामी है उसे करोड़पति बनने की धुन सवार है । इस प्रकार लोग तृष्णा के अनन्त प्रवाह मे बहे जा रहे है । उनका कोई लक्ष्य स्थिर नही है । स्थिरता के अभाव मे शान्ति नही मिल सकती । सच्ची शान्ति त्याग और सन्तोष मे है । धर्म की आराधना करने से ही सच्ची सुख की प्राप्ति होती है ।

(९)

असन्तोष दुःख का बीज है। कितनी ही सम्पत्ति क्यों न हो, अगर उसके साथ सन्तोष नही है तो वह शान्ति प्रदान नही कर सकेगी। इसके विपरीत सन्तोषी पुरुष स्वल्प सामग्री में ही परम सुख का आस्वादन कर लेता है।

(१०)

देखो सांप हवा का पान करते है फिर भी दुर्बल नहीं होते। जंगली हाथियों को बादाम का हलवा कोई नही खिलाता वे रूखे-सूखे तिनके खाते है। फिर भी कितने बलशाली होते है? इसका कारण क्या है? असली बात यह है कि वे सन्तोष धारण करते है और संतोष के प्रभाव से उनका काम चल जाता है सन्तोष ही मनुष्य के लिए बड़े से बड़ा खजाना है।

(११)

अगर सच्चा सुख और सच्ची शान्ति चाहते हो तो धन की मर्यादा करके तृष्णा पर अंकुश लगाओ।

(१२)

चक्रवर्ती, वासुदेव और बलदेव की सम्पत्ति पा लेने पर भी, सन्तोषहीन मनुष्य कभी तृप्त नहीं हो सकता और तृप्ति के बिना सुख की प्राप्ति नही हो सकती। ऐसा जान कर धीर पुरुष कभी लोभ-रूपी ग्रह के अधीन नही होते हैं।

—: ईर्ष्या :—

(१)

द्वेषी पुरुष दूसरे का उत्कर्ष सहन नहीं कर सकता उसने किसी की बडाई सुनी और उसके दिल मे द्वेष का दावानल दहक उठा जैसे चुपचाप चले जाते राहगीर को देखकर कुत्ता निष्कारण ही भौंकने लगता है। उसी प्रकार किसी भी सौभाग्यशाली को देखकर द्वेषी जलने लगता है।

(२)

भोगी त्यागी को देखकर जलता है। धनवान् को देखकर निर्धन कुढते है, निरोग को देखकर रोगी जलता है, सुन्दर और रूपवान पर नजर पडने से कुरूप को जलन होती है। यह स्वाभाविक है। केसर और काजल मे बनती नहीं है।

(३)

पानी की वर्षा होती है तो सब प्रकार की वनस्पतियाँ फलती–फूलती है। किन्तु जवासा नामक एक रूखडी इसका अपवाद है। जैसे जैसे वृष्टि होती है, वह सूखती जाती है। वर्षा जवासा को पसंद नहो आती तो कहो भाई! इसमे पानी का क्या दोष ? इसी प्रकार जो पुरुष दुर्गुणो का अखाड़ा बना

हुआ है, वह सद्गुणों और सद्गुणवानों को देख २ कर ईर्ष्या की आँच से तपता रहता है और सूखता जाता है। दुर्गुणी को गुणवान की बात पसन्द नही आती यहां तक कि किसी-किसी पापी को तो परमात्मा को महिमा भी नहीं रुचती है। इसमें गुणवान का क्या दोष है।



-: राग-द्वेष :-

(१)

जितनी भी राग-द्वेष रूप परिणति है, आत्मा को पतन की ओर ले जाने वाली है। वह पडने का मार्ग है।

(२)

ससार और संसार सम्बन्धी जितने भी दुख है, उन सब का कारण विषमभाव है। अगर राग-द्वेष रूप विषमभाव नष्ट हो जाय तो किसी प्रकार का दु:ख उत्पन्न न होगा।

(३)

राग और द्वेष की आग मे यह सारा जगत् जल रहा है। स्थूल अग्नि तो स्थूल शरीर को ही जलाती है मगर यह भीतरी आग आत्मा के सद्गुणों को विनष्ट करती है या विकृत करती है। स्थूल अग्नि एक ही जन्म मे मार सकती है मगर राग-द्वेष की अग्नि जन्म जन्मान्तर मे आत्मा को सताया करती है।

(४)

जिस आदमी के शरीर मे द्वेष तीव्र रूप मे रहता है, उसका खून जल जाता है। [illegible]

तो भी दुबला ही बना रहता है। द्वेष से मनुष्य को घोर हानि उठानी पड़ती है। द्वेषी मनुष्य स्वयं तो हानि उठाता ही है पर दूसरो को भी हानि करता है।

(५)

द्वेष एक प्रकार की अग्नि है। यह अग्नि जब हृदय में भड़कती है तो मनुष्य व्याकुल हो जाता है। वह उस आग से दूसरो को जलाना चाहता है। दूसरा जले या न जले वह स्वयं तो बुरी तरह जल ही जाता है।

(६)

दूसरो के द्वेष भाव को शान्त करने का उपाय यह नही कि बदले मे द्वेष किया जाय। आग से आग शान्त नही होती। आग को शान्त करने के लिए जल अपेक्षित है। इसी प्रकार द्वेष का नाश मैत्री से होता है।

(७)

भाइयो! अगर आप अपने जीवन को उन्नत और पवित्र बनाना चाहते है तो द्वेष का परित्याग करो। द्वेष की आग से अपने आपको जलाना तनिक भी बुद्धिमत्ता नही है। द्वेष का दुर्गुण आपको पतन के गहरे गड्डे मे गिराने वाला है। द्वेष की आग आपके समस्त सद्गुणों को जलाकर भस्म कर देगी उससे आपका जीवन निष्फल हो जायगा।

(८)

पक्षपात या द्वेष से वुद्धि कुंठित हो जाती है और सत्य तत्त्व का भान नही हो पाता। अतएव द्वेष और पक्षपात का त्याग करो।

(६)

कलह प्रिय व्यक्ति कलह के बीज बोता है और मूर्ख लोग उसके फल खाकर पागल वन जाते है और आपस मे लडाई झगडा करते है।

(१०)

राग भी द्वेप की ही तरह कर्म-बन्ध का कारण है। अतएव जिस प्रकार राग त्याज्य है, उसी प्रकार द्वेष भी त्याज्य है। दोनों आत्मा मे विकार उत्पन्न करते है। दोनो के कारण आत्मा मे विभाव परिणति उत्पन्न होती है। जब तक आत्मा मे राग और द्वेष का सद्भाव है आत्मा अपने असली स्वरूप को पूरी तरह नही देख पाता है।

(११)

भाइयो! राग और द्वेष ससार भ्रमण के मुख्य आधार है। इनका जितने जितने अंश मे त्याग करते चलोगे, उतने ही उतने अंश मे आपके सुख की मात्रा वढती जायगी और आप अपूर्व शान्ति एव स्वस्थता का अनुभव करते जाएँगे। अन्त मे पूर्ण आत्मिक आनन्द की प्राप्ति कर सकेंगे।

(१२)

राग और द्वेष दोनों ही कर्म बन्ध के कारण है। इनके प्रभाव से मन और आत्मा की स्वस्थता नष्ट हो जाती है। इसी कारण शास्त्र मे इन्हे कर्मों का बीज कहा है। अतएव जो आत्मा का कल्याण करना चाहते है उन्हें राग-द्वेष को निरन्तर घटाने का ही प्रयत्न करना चाहिये। उन्हे अधिक से अधिक समभाव की वृद्धि करनी चाहिए।

(१३)

राग भाव अनादि काल से आत्मा के साथ लगा हुआ है। इस राग की आग मे आत्मा झुलस रही है। राग ही केवल–ज्ञान केवल–दर्शन और यथाख्यात चारित्र मे बाधक है। ज्योंही राग भाव निर्मूल हो जाता है त्योही आत्मा सर्वज्ञ, सर्वदर्शी और वीतराग चारित्र का अधिकारी हो जाता है।

(१४)

भाइयो ! अगर आपको स्नेह ही करना है, तो परमात्मा से स्नेह करो। परमात्मा के प्रति प्रगाढ़ प्रीति करोगे तो ससारिक पदार्थों सबंधी प्रीति हट जायगी और उससे आत्मा का उत्थान और कल्याण होगा। परमात्मा से प्रेम न करके जो लोग संसार की वस्तुओं से प्रेम करते है, वे अपने लिये नरक का द्वार खोलते हैं।

-: निंदा :-

(१)

अगर आप दूसरो की निन्दा करने वाले है तो समझ लीजिए कि आप दुनियां की गन्दगी को खोज-खोज कर अपने भीतर भर लेने चले है। अपने आपको मलीन बनाने चले है। अपने मार्ग मे कांटे बिछाने चले हं। कल्याण के मगल द्वार में ताला लगाने चले हैं।

(२)

कौवे को कितनी ही मिठाई खिलाओ, वह गन्दगी पर बैठे बिना नही रह सकता। पर कौवे का कौन आदर करता है इसी प्रकार निन्दक की कही कद्र नही होती। निन्दक से पाला पडता है तो लोग कहते है 'अजी जनाब, आप तशरीफ ले जाइए, कही आपके मुख से कीड़े न झड़ पड़े।

(३)

दूसरे के दोषो का ढोल पीट कर ही क्या तुम गुणी बन जाना चाहते हो ? नहीं, दूसरे के दोष देखना और उन्हें फैलाना तो स्वय एक महान दोष है। इस दोष का सेवन करके तुम दोषी ही बन सकते हो, गुणी नही बन सकते।

(४)

जो साधु, साध्वी श्रावक या श्राविका तत्त्व का स्वरूप समझ गया है, ज्ञान–ध्यान भी करता है, तपस्या भी करता है, फिर भी अगर वह कहता है कि हम अच्छे है और दूसरे बुरे है, हम धर्मात्मा हैं और दूसरे अधर्मी है, हम भक्त है और दूसरे दुष्ट है, जो अपने मुख से अपनी महिमा करता है और दूसरे की निन्दा करता है। वह अपनी करनी पर पोता फेरता है। वह अपनी आत्मा को गिराता है। इसका ज्ञान, ध्यान, तप और त्याग आत्मशुद्धि का कारण न होकर कषाय का पोषक बन जाता है।

(५)

विवेकवान् पुरुष किसी की निन्दा नही करते। वे सोचते है कि पराई निन्दा करने से हमे क्या लाभ है ? निन्दा करने से मुँह मीठा नही होता, सम्पदा नही मिलती, बडाई भी नही मिलती, कल्याण भी नही होता। यही नही, परनिन्दक समझदार लोगों मे हीन दृष्टि से देखा जाता है और ज्ञानियो की दृष्टि मे व्यर्थ ही पाप का उपार्जन करता है।

(६)

समझदार व्यक्ति नारद–प्रकृति लोगों को अपने पास नही फटकने देते। कदाचित् उनकी बात सुन लेते है तो उस पर ध्यान नही देते और सुनी अनसुनी कर देते है। अथवा सुनाने वाले से स्पष्ट कह देते है कि भाई, तुम अपना काम

देखो। दूसरा मुझ गाली देता है तो देने दो। जब मेरे सामने देगा तो मैं निपट लूगा। इस प्रकार साफ उत्तर देने से भिड़ाने वाले का साहस टूट जाता है। वह फिर उसके सामने नही बोलता।

(७)

भाइयो ! निन्दा करने से बचो। दूसरो की राख लेकर अपने मस्तक पर बिखेर लेने से क्या लाभ है ? ससार मे गुणीजन बहुत है। उनके गुणो को देखो और प्रशसा करो। इससे आपको आनन्द ही आनन्द प्राप्त होगा।

(८)

पाप की निन्दा करो, मगर पापी की निन्दा मत करो।

(९)

साधु की भूल देखकर जो निन्दा करते हैं, हँसी करते है, उन्हे समझना चाहिए कि लाठी कैसी भी टूटी-फूटी क्यो न हो, मटके को तो वह फोड़ ही सकती है।

(१०)

आत्म-निन्दा करने से अपने दोषों के प्रति असन्तोष जागृत होता है और आत्मा की शुद्धि होती है। पर की निन्दा करने से आत्मा की मलिनता बढती है। आत्मा का पतन होता है। और लाभ कुछ होता नही। अतएव अगर आप अपना कल्याण चाहते है तो पर-निन्दा के पाप से दूर रहना चाहिये।

-: पाप :-

(१ अ)

परस्त्रीगामी लम्पट भी रावण के पुतले की दुर्दशा करने मे पीछे नहीं रहते। इसका कारण यही है कि पापी की आत्मा भी पाप से घृणा कराती है। आत्मा का असली स्वभाव उसे पाप के प्रति घृणा कराना सिखलाता है।

(१ ब)

मनुष्य का जीवन एक चौराहा है। चौराहे पर प्रकाश--स्तम्भ लगा रहता है और उस प्रकाश मे चारो ओर जाने वाले रास्ते दिखाई देते हैं। इसी प्रकार मनुष्य जीवन से चारों गतियों के लिये रास्ते जाते है। शास्त्र और सद्गुरु का प्रकाश इस चौराहे पर मौजूद है। चारो गतियो का मार्ग उस प्रकाश मे देखा जा सकता है। आप यह भी जान सकते है कि किस गति मे जाने से क्या हालत होगी ? जिन्हे सुखमय हालत प्राप्त करनी है उन्हें देवगति और मनुष्यगति की राह पकड़नी चाहिये, अर्थात् धर्म कर्म करना और पापो से बचना चाहिए। पाप पहले भले लगते है पर अन्त मे बहुत बुरे साबित होते हैं।

(२)

भाइयो ! पापी की आत्मा दुर्बल होती है। पाप ऐसा कीडा है कि वह मनुष्य के अन्तस्तल को कुतर–कुतर कर निर्बल और निःसत्त्व बना देता है। सच्चाई के सामने पाप क्षण भर नही ठहर सकता।

(३)

इष्ट की प्राप्ति के लिए पाप का आचरण करना आम पाने के विचार से बबूल की खेती करने के समान है।

(४)

पाप मनुष्य को अपनी ही निगाहो मे गिरा देता है। पाप मे एक ऐसा विचित्र तीखापन होता है कि वह हृदय को काटता रहता है। पापी की आत्मा सदैव सशक रहती है।

(५)

अन्तस्तल को निष्पाप बनाओगे तो निस्ताप बन जाओगे।

(६)

याद रक्खो, पुण्य कमाना कठिन है, पर पाप का उपार्जन करने मे कुछ भी देर नही लगती। जोडने मे देरी लगती है, तोड़ने मे क्या देर लगती है ?

(७)

अज्ञानी पुरुष पाप-कर्म से तो बचने का प्रयत्न नही करता किन्तु पापकर्म के फल से-दुःख से-बचने का प्रयत्न करता है। किन्तु ज्ञानी सोचता है कि विषफलों से बचने का ठीक उपाय यही है कि विषवृक्ष को जड़ से उखाड़ दिया जाय ! न रहेगा बांस न बजेगी बांसुरी। जिस वृक्ष से दुःखों के विष-फल उत्पन्न होते है, उस वृक्ष को ही उखाड देने मे बुद्धिमत्ता है अर्थात् पापकर्म से उत्पन्न होने वाले दुःखों को नष्ट करने के लिए पापकर्मों से दूर रहना ही उचित है।

(८)

जैसे आगे जाने के लिए पीछे कदम उठाने वाला आदमी बुद्धिमान नहीं कहा जा सकता, उसी प्रकार धन, ऐश्वर्य आदि सुख की सामग्री प्राप्त करने के लिए पाप का आचरण करने वाला व्यक्ति भी विवेकवान् नही कहा जा सकता।

(९)

तुम सुख पाने के लिए पापो का आचरण करते हो मगर ऐसा करके कदापि सफल मनोरथ नही हो सकते।

(१०)

विषपान करके चिरजीवन की अभिलाषा करना घोर मूर्खता नही तो क्या है ! इसी प्रकार पाप करके सुखी बनने की अभिलाषा भी मूर्खतापूर्ण ही कही जा सकती है।

(११)

कल्पवृक्ष या उसके फलों की कामना से प्रेरित होकर जो बबूल बोता है, उसे क्या कहा जाय ? बबूल बोने से कल्पवृक्ष के फलो की प्राप्ति होना संभव नही है, इसी प्रकार पापमय आचरण करके पुण्य-फल की आशा रखना भी दुराशा मात्र है।

(१२)

जैसे नीम के वृक्ष में आम के फल नही लग सकते। जैसे लाल मिर्च खाने से मुंह मीठा नही हो सकता, उसी प्रकार पाप करने से सुख नही मिल सकता।

(१३)

कागज की नाव बना कर और उस पर सवार होकर अगर कोई समुद्र पार होना चाहता है तो उसे पागल के सिवाय और क्या कहा जा सकता है ? इसी प्रकार जो जुल्म करके, पाप करके फलना-फूलना चाहता है अर्थात् सुखी और सौभाग्यशाली बनना चाहता है, वह भी मूर्खो की कतार मे ही खड़ा होने योग्य है।

(१४)

बीज बोने की तुम्हें स्वाधीनता प्राप्त है। किन्तु बीज बो देने के बाद अंकुर इच्छानुसार पैदा नही किये जा सकते। तुम चाहो कि पापाचरण करके हम दुःख के बीज बोएँ और

उनसे सुख के अंकुर फूट निकले, यह सर्वथा असंभव है। अपढ किसान भी समझता है कि चने के बीज से गेहूँ का पौधा नही उत्पन्न होता मगर तुम उससे भी गये-बीते हो।

(१५)

पाप का परिणाम तो किसी के लिए भी अच्छा नही होता। देखो रावण कितना प्रतापशाली और प्रचण्ड राजा था। उसकी नियत बिगड गई। वह सीता जैसी आदर्श सती को हरण करके ले गया। इस घोर पाप से उसका समस्त पुण्य क्षीण हो गया। बढ़िया-बढ़िया पौष्टिक चीजे डाल कर सीरा बनाया जाय। किन्तु अन्त मे उसमे संखिया मिला दिया तो वह सीरा प्राणो का संहारक होता है। इसी प्रकार एक भी भयंकर पाप अनेक सुकृतो के फल को दबा देता है।

(१६)

मनुष्य अपनी करतूत को भूल जाता है। परन्तु वह करतूत अपना फल देना कभी नहीं भूलती। यथा समय उसे उसका फल अवश्य भोगना पड़ता है। पाप का प्रतिफल अत्यन्त दुःखद होता है। इसीलिए मै आपको सावधान कर रहा हूँ कि अपना कल्याण चाहते हो तो पाप से बचो, पाप से बचोगे तो आनन्द ही आनन्द होगा।

(१७)

दूसरों को पापाचरण करते देख कर स्वयं पापाचरण करना योग्य नही है। अधर्म करके पैसा जमा करने से अन्त मे

हित नही, अहित ही होगा। किसी चोर को करोडपति होते नही देखा। वे दिवालिया के दिवालिया ही रहते है। बहुत-से सासी और कजर चोरी करते है, फिर भी भूखे के भूखे ही रहते है।

(१८)

अगर आप अपनी आत्मा को बचाना चाहते हैं तो पापो से दूर रहो, पाप की सराहना करने से भी बचो और पापी की निन्दा रूप पाप से भी बचो। अपनी आत्मा को निष्पाप बनाओगे तो निष्पाप बन जाओगे। आपका कल्याण होगा।

(१९)

पापाचरण करने वाला स्वयं ही पतित नही होता। वरन् दूसरो को भी पतित होने की प्रेरणा करता है।

(२०)

भाइयो ! पाप कर्म चोर है और जब इनसे सावधान रहकर बचोगे तभी तुम्हारा कल्याण होगा। जो पाप कर्मों से बचने का संकल्प कर लेते है वे अक्षय संपदा के धनी बन जाते है।

(२१)

जीवित रहने के लिए विष का पान करना जैसी मूर्खता है, उसी प्रकार सुखी बनने के लिए पाप का आचरण करना भी मूर्खता है। यह उलटा प्रयास है।

(२२)

निरर्थक वाते बना कर अपने भविष्य को कटकमय बनाना कहां की बुद्धिमत्ता है। प्रयोजन से पाप करने वाला कदाचित् क्षम्य हो सकता है किन्तु निष्प्रयोजन ही आत्मा को पाप के भार से लादने वाला कैसे क्षम्य समझा जा सकता है?

(२३)

दही को मथने से मक्खन निकलता है। यह वात दुनिया जानती है और आप भी जानते है। पर क्या जान लेने मात्र से मक्खन निकल आता है? नही, क्रिया किये विना, दही को मथे विना मक्खन नहीं निकलेगा। इसलिए हमारा कहना है कि पापो से वचो। पापो से वचे विना तुम्हे स्वर्ग और मोक्ष नही मिल सकता।

(२४)

दुख से वचना हो तो सर्वज्ञ के उपदेशो पर चलो। पाप-पंक मे आकठ निमग्न रहोगे और सुख भी चाहोगे तो ऐसा नहीं हो सकेगा।

(२५ अ)

जो ब्रांडी के नशे में धुत्त हो जाता है, वह किसी की नहीं सुनता। इसी प्रकार जिसकी आत्मा पर पापों का गहरा नशा छा जाता है, वह ज्ञानी और परोपकारी पुरुष की भी वात नही सुनता। कदाचित् सुनता है तो एक कान से सुनकर दूसरे कान से वाहर निकाल देता है।

(२५ ब)

किसी कुत्ते को रोटी डालोगे तो वह भी तुम्हारा मुँह चाटने का साहस करेगा। नही डालोगे तो वह ऐसा साहस भी नही करेगा। इसी प्रकार झूठ बोलना, चोरी करना, परस्त्री गमन करना, बेईमानी करना आदि कुत्ते है। इन्हे जीवन मे हिला लिया तो ये मुह चाटे बिना कैसे रहेगे।

(२६)

जैसे रुई में लपेटी आग दबी नहीं रह सकती, उसी प्रकार पाप छिपाये छिप नही सकते। किसी रोज बुरे कर्म का फल बहुत बुरा होता है।

(२७)

पाप मन में है, धन में नही है। जीव को मोक्ष में जाते हुए धन नही रोक सकता और न तन ही रोक सकता है। किन्तु पापमय मन ही मुक्ति में रुकावट डालता है।

(२८)

पाप का आचरण न करोगे तो क्या जीवन-निर्वाह नही होगा? पाप न करने वाले क्या भूखे रहते है? पाप करके सम्पत्ति इकट्ठी करना चाहते हो तो अपनी इस दुष्कामना को त्याग दो। सम्पत्ति परलोक मे सुखी नही कर सकेगी। यही नही, सूक्ष्म विचार करोगे तो स्पष्ट झलकेगा कि वह इस लोक मे भी सुख नहीं दे सकती।

—: रात्रि भोजन :—

(१)

भाइयो ! रात्रि मे भोजन करना बडा भारी पाप है। रात्रि मे भोजन करने वाले को क्या पता चलेगा कि भोजन में दाल मे कीडी है या जीरा है ? वह तो कीड़ियों को भी जीरा समझकर खा जायगा ।

(२)

ज्ञानियों ने रात्रि भोजन को अंधा भोजन कहा है। सूर्यास्त होने के बाद स्पष्ट दिखाई नहीं देता, अतएव रात्रि-भोजन बहुत बुरी चीज है। बुद्धिमान पुरुष कभी रात्रि मे भोजन नही करते। अरे खाने के लिए दिन ही बहुत है तब रात्रि को भोजन करने से क्या फायदा है ?

(३)

हजम होने से पहिले ही सो जाओगे तो खाना पचाने के लिये पेट की मशीन को बहुत ज्यादा मेहनत करनी पड़ेगी और इससे मशीन जल्दी कमजोर हो जायगी। जो लोग सूर्यास्त से पहले ही खा लेते हैं, उनके पेट की मशीन को विश्राम मिल जाता है। गहरी नींद आने के कारण वह स्वस्थ रहते हैं।

(४)

रात्रि भोजन अप्राकृतिक है। देखो ! तोता रात्रि में कुछ नही खाता है, कबूतर और यहां तक कि पक्षियो मे निकृष्ट समझा जाने वाला कौवा भी रात्रि मे चुगने नही जाता। तो क्या मनुष्य इनसे भी अक्षम है जो रात्रि मे भोजन करे ? रात्रि का भोजन अन्धा भोजन है ; अनेक दोषो का जनक है।

(५)

रात्रि भोजन पापो और दोषों का घर है। रात्रि में अन्धेरे मे खाओ तो जीव जन्तु भी खाये जा सकते है और यदि प्रकाश करके खाओ तब भी वही बात है। प्रकाश से आकर्षित होकर बहुत से सूक्ष्म और स्थूल जन्तु उड़-उड़कर आते है और भोजन मे गिर जाते है, उनमे बहुत से तो इतने सूक्ष्म होते है कि आँखो से, खास तौर पर रात्रि मे नही दिख पड़ते। यह धार्मिक दृष्टि से बडी हानि है। स्वास्थ्य के लिहाज से भी रात्रि भोजन हानिकार होता है। भोजन करके सो जाने से अनेक रोग उत्पन्न होते है।

(६)

चिड़िया और कौवा जैसे व्यक्ति भी रात के समय चुगने नही निकलते तो हे मनुष्य ! तू क्या उनसे भी गया बीता है ? तूने मनुष्य का उत्तम शरीर पाया है और पक्षियों की अपेक्षा अच्छी बुद्धि भी पाई है, सो क्या इसलिए कि तू उनसे भी गये बीते काम करे ? अरे समझदार प्राणियो के सरदार ! तू रात्रि पड़ने पर भी खाने से नही चूकता ?

(७)

रात्रि में चिड़ियाँ, कबूतर और कौवे आदि भी चुगने को नहीं जाते हैं तो आप तो इन्सान है। रात्रि में खाना बिलकुल मना किया गया है। रात्रि में न खाने से बारह महीने में छह महीने की तपस्या बिना जोर लगाये ही हो जाती है। इससे शुभ गति का भी बन्ध होता है और अशुभ गति का बन्ध टल जाता है।

(८)

भाइयो ! रात्रि भोजन त्याग किसी सम्प्रदाय विशेष का ही आचार नहीं है। जैसे दया, दान, क्षमा, करुणा, परोपकार, ध्यान, स्वाध्याय, सत्य, आचौर्य, ब्रह्मचर्य आदि धर्म साधारण है अर्थात् उन्हें किसी सम्प्रदाय का धर्म नहीं कहा जा सकता। उसी प्रकार रात्रि भोजन का त्याग भी एक सामान्य है। क्या जैनों के लिए और क्या वैष्णवों के लिए सभी के लिए यह आवश्यक है। जो भी रात्रि भोजन का त्याग करेगा, अपना इहलोक सुधारेगा और परलोक भी सुधारेगा। वह अनेक बीमारियों से भी बचेगा और दुर्गति से भी बच सकेगा।



-: धन-वैभव :-

(१)

भाइयो ! इन अठारह पापों मे हिसा, असत्य, स्तेय और मैथुन की तरह पगिग्रह भी महान् पाप है। इससे आत्मा का अध पतन होता है बल्कि यों कहना चाहिए कि परिग्रह सब पापो का बाप है।

(२)

धन से धर्म नही होता वरन् धन के त्याग से धर्म होता है।

(३)

जैसे स्वच्छता के लिए पहले मैल लगाना और उसकी सफाई करना आवश्यक नहीं है; उसी प्रकार धर्म की आराधना के लिए पहले धन कमाना और फिर उसका त्याग करना आवश्यक नही है।

(४)

जिसके शरीर पर मैल नहीं है वह नये सिरे से मैल नही चढ़ने दे यही उसकी स्वच्छता है, इसी प्रकार जिसके पास

धन मिल जाना चाहिए। तिजोरियां भर जानी चाहियें। जैसे समग्र जीवन धन के लिए समर्पित है। धन देवता के आगे अपनी आत्मा को बलि का बकरा बना डाला है। इस प्रकार धन के लिए लोग आत्मा का हनन कर रहे है और जानते हैं कि यह हमारे काम आने वाला नही। यह कितनी अद्भुत बात है।

(१०)

हम फकीर शायद न समझ पाते हो तो, हे धन कुबेर! तू बता। तेरे बड़े २ धन के भडार तेरे लिए किस काम के है? क्या तू उस धन को खा सकता है? पहन सकता है? आखिर किस प्रयोजन से तू तिजोरियों पर तिजोरियाँ भरे जा रहा है? वस्तुतः इस प्रश्न का कोई सन्तोष जनक उत्तर नहीं दे सकता। शरीर की आवश्यकताएँ बहुत सीमित है। उनकी पूर्ति के लिए झूठ-कपट अन्याय, अत्याचार, चोरी, डकैती, जुआ-सट्टा आदि करने की आवश्यकता नहीं है। वह तो प्रामाणिकता के साथ अल्पश्रम करने से भी पूरी हो सकती है। उनके लिए पाप का सेवन करना व्यर्थ है। दिन-रात हाय पैसा हाय पैसा की धुन की आवश्यकता नही है।

(११)

भाइयो! विचार तो करो कि पैसा-प्रधान मनो-भावना से तुम्हारा सुख बढ़ा है या घटा है? जीवन मे शांति का संचार हुआ है अथवा अशांति की आग ही सुलगती जा

रही है ? अरे ! पैसा देव नही, दानव है, इससे तुम्हे सुख नही मिलेगा, बल्कि यह तुम्हारे सुख को छीन लेगा। मगर यह बात तुम्हारे गले कहां उतर रही है ? आँखों देखते भी जो अनजान बना रहता है, उसका कोई क्या करे ?

(१२)

लक्ष्मी का वाहन जो उलूक है, सो अज्ञानान्धकार का प्रतीक है। जहाँ लक्ष्मी है अर्थात् धन है, वहाँ अज्ञान है, मूढता है।

(१३)

धन के नाश के तो सैकडो कारण मौजूद है। चोर चुरा ले जाते है, डाकू लूट ले जाते है, बाढ बहा ले जाती है, आग नष्ट कर देती है, भाई-बन्धु छीन लेते है या दुर्व्यसन मे पडकर उडा देते है। ऐसी नाशशील वस्तु का अभिमान कैसा ? सच तो यह है कि अभिमान करने की तो बात ही दूर, धन या अन्य सासारिक पदार्थ तुम्हारे हैं ही नही। तुम चेतन हो, धन आदि वस्तुए जड है। भला जड़ पदार्थ चेतन के किस प्रकार हो सकते है ?

(१४)

भाइयो ! यह धन दौलत और राज्य लक्ष्मी वेश्या के समान है। यह स्थिर वृत्ति वाली नही है। आज एक की बगल मे खड़ी हो जाती है कल दूसरे की। इस पर

विश्वास करना सिर्फ नादानी के सिवाय और कुछ भी नही है। यह आजतक किसी भी राजा महाराजा या सेठ साहूकार की बनकर नहीं रही है।

(१५)

परोक्ष वस्तु मे भ्रम होना सहन किया जा सकता है। मगर आँखो से दिखाई देने वाली वस्तु को भी उलटा समझना कहाँ तक उचित है ? तुम, हम और सभी प्रत्यक्ष देखते है कि कोई भी सम्पत्ति पर भव मे साथ नही जाती सिर्फ पाप और पुण्य ही साथ जाता है। फिर धन और सम्पत्ति के लिये पापों का उपार्जन करना क्या बुद्धिमत्ता है ? नही, यह अविवेक है। मूर्खता है।

(१६)

पैसे से पाप बदल कर पुण्य नहीं बनाया जा सकता। वह तो अपने स्वरूप मे ही अपना फल देता है और देता रहेगा।

(१७)

सोना मनुष्य की मनुष्यता को नष्ट कर देता है ! गरीब और अमीर के बीच फौलादी दीवार खडी करने वाली वस्तुओं मे सोना भी मुख्य है। सोना मनुष्य को निर्दय बना देता है, घमंडी बना देता है और राक्षस बना देता है ! आश्चर्य है कि फिर भी लोग इसे प्यार करते है और इसे पाकर अपने आपको धन्य समझते है।

(१८)

जिस सम्पत्ति के लिये तुम रात दिन एक कर रहे हो, अनीति और नीति की परवाह नही करते हो, धर्म और अधर्म का विचार नही करते, उस सम्पत्ति मे से क्या-क्या साथ लेकर जाओगे ? मित्रो ! आंखे खोलो। तम्हारे पुरखा चले गये और वे कुछ भी साथ नही ले गये। अब क्या तुम साथ ले जा सकोगे नही, हर्गिज नही। सब कुछ यही पडा रह जायगा। आँख मिचते ही माल पराया हो जायगा। तुम भी इस बात को जानते हो और भली भाँति जानते हो। फिर भी भ्रम मे पड़े हो ? आश्चर्य है कि फिर भी परलोक को सुधारने की तरफ ध्यान नहीं देते हो। अगर तुम हिन्दू हो तो लकडो मे दबाकर भस्म कर दिये जाओगे और यदि मुसलमान हो तो जमीन मे गडहा खोद कर दबा दिये जाओगे। बस किया हुआ पुण्य और पाप ही साथ जायगा।

(१९)

जीवन सदा रहने वाला नहीं है और सम्पदा साथ जाने वाली नहीं है। शरीर की आवश्यकताए परिमित है फिर क्यो दुनिया भर की पूँजी अपनी तिजोरी मे बद करने के लिए पाप करते हो।

(२०)

जो लोग अपने जीवन का अधिक भाग धन कमाने मे व्यतीत कर चुके हैं, उन्हें निवृत हो जाना चाहिए। जिन्दगी

के अन्तिम श्वास तक गधे की तरह लदे-लदे फिरना ठीक नहीं, दुनियाँ के धंधे छोडो और परमात्मा की प्रीति से बंधे रहो। धर्मोपदेश सुनने का यही सर्वोत्तम सार है।

(२१)

संपत्ति का रोग बडा ही भयानक होता है। अन्यान्य रोग तो प्रायः एक-एक ही विकार उत्पन्न करते है, मगर लक्ष्मी का रोग एक साथ अनेक रोगो को उत्पन्न कर देता है। जिसे धन की बीमारी हो जाती है, वह कानों से बहिरा हो जाता है, मुंह से गूंगा हो जाता है, आँखों मे अंधा हो जाता है, और उसकी तमाम इंद्रियाँ विकार ग्रस्त बन जाती है।

(२२)

धन के मद मे उन्मत्त बना हुआ मनुष्य गरीबों से बात भी नही करता। उनसे बोलने मे वह अपनी बेइज्जती समझता है। यही धनवान का गूँगा होना समझना चाहिए। धनी आदमी कर्तव्य और अकर्तव्य के मार्ग को नही देखता, नीति और अनीति का पथ उसे नही सूझता, वह दीन-दुखियो को तरफ दृष्टि भी नही डालता, यही उसका अंधापन है।

(२३)

संपत्ति की बीमारी मनुष्य को हृदयहीन बना देती है सम्पत्तिशाली के पड़ोसी के बालक भूख से कराह रहे हों तो

वह उनकी परवाह नही करता । उनकी दु ख–दर्द भरी आवाज उनके कानो तक नही पहुचती । उसके चित्त पर उसका कुछ भी असर नही होता । यह बहिरापन नही तो क्या है ?

(२४)

जो लोग श्री–सम्पन्न होने पर भी भगवान के भक्त होते है, उन्हे यह संपद् रोग नही हो पाता । भक्ति का अमृत रसायन उसके रोगों को शमन करता रहता है । इस प्रकार लक्ष्मी के होते हुए भी जो लक्ष्मी के मद से रहित होते है, वे इस रोग से बचे रहते है ।

(२५)

ससार का समस्त वैभव यही रह जाता है । वह आज तक किसी के साथ गया नही है और जायगा भी नही । धर्म ही साथ जाने वाला है । एसी स्थिति मे वैभव के चक्कर मे पडकर धर्म विस्मरण कर देना उचित नही है । शाश्वत को त्याग कर अशाश्वत को अपनाने मे बुद्धिमत्ता नही ह । आत्मा की गुण सम्पत्ति ही उसका शाश्वत वभव है, उसे प्राप्त करने का मार्ग साधुपन है ।

(२६)

किसी के हक मे बुरा मत करो । तुम्हारा किया तुम्हें ही भोगना पड़ेगा । बुरे विचारों का और बुरे कार्यों का फल भी अच्छा नही हो सकता । जिस धन–दौलत के लिए तुम

पापमय विचार करते हो, वह आत्मा के साथ नही जायगी। वह पाप ही आत्मा के साथ जायगा और तुम्हे पीड़ा पहुंचावेगा धन सम्पत्ति और भोग सामग्री तो चार दिन की चांदनी और उसके बाद अँधेरी रात होगी।

(८७)

तुम्हारी यह रईसी और सेठाई किसके सहारे खड़ी है ? बेचारे गरीब और मजदूर दिन रात एक करके तुम्हारी तिजोरियाँ भर रहे है। तुम्हारी रईसी उन्ही के बल पर और उन्ही की मिहनत पर टिकी हुई है। कभी कृतज्ञता पूर्वक उसका स्मरण करते हो ? कभी उनके दुःख मे भागीदार बनते हो ? अपने सुख मे उन्हे हिस्सेदार बनाते हो ? उनके प्रति कभी आत्मीयता का भाव आता है ? अगर ऐसा नही होता तो समझ लो कि तुम्हारी सेठाई और रईसी लम्बे समय तक नही टिक सकेगी। तुम्हारी स्वार्थ परायणता ही तुम्हारी श्रीमताई को स्वाहा करने का कारण बनेगी। अभी समय है गरीबो, मजदूरो और नौकरो की सुधि लो। उनके दुःखों को दूर करने के लिये हृदय में उदारता लाओ। उनकी कमाई का उन्हे अच्छा हिस्सा दो। इससे उन्हें सन्तोष होगा और उनके सन्तोष से तुम सुखी बने रहोगे।

(८८)

व्यापारी का आदर्श दूसरो को कष्ट पहुँचा कर अपनी तिजोरियाँ भरते रहना नही है। गरीबों को चूसना व्यापारी

का कर्तव्य नही है। जनता के अभाव को दूर करने के लिये व्यापार की प्रथा चलाई गई थी। एक जगह कोई चीज आवश्यकता से अधिक होती है और दूसरी जगह इतनी कम होती है कि उसके अभाव मे जनता को भारी कष्ट भुगतना पडता है। ऐसी स्थिति मे व्यापारी एक जगह से दूसरी जगह वस्तुएँ पहुँचाकर सब को सुविधा कर देता है और उसी मे से अपने निर्वाह के लिए उचित मुनाफा ले लेता है।

(७६)

व्यापारी कान खोलकर सुन ले कि ब्लेक मार्केट एक प्रकार की चोरी है और इस तरीके से अगर कमाई करना शीघ्र ही नही छोड़ दिया जायगा तो उसकी प्रतिक्रिया बडी ही भयकर हो सकती है। ब्लेक मार्केट करने वाले व्यापारी अपने भविष्य को भूल रहे है। वे समाज मे आर्थिक क्राति का आव्हान कर रहे है। कहना चाहिये कि आज अज्ञान वश पूजीपति ही पूंजीवाद के विरुद्ध वातावरण का निर्माण कर रहे है।

(८०)

पूछो लोगो को पहले तुम्हारे पास कितना पैसा था और तुम्हारी क्या हालत थी ? अब कितना गुना पैसा है ? मगर सन्तोष नही। चोर बाजार अब भी तैयार है। कोई भी अनीति और अत्याचार करने से परहेज नही। पता नही कि उसका फल कितना कटुक भुगतना पड़ेगा।

(३१)

गरीबो के असन्तोष को दूर करने का तरीका क्या है यह हमारे शास्त्र हजारों वर्ष पहले ही बतला चुके है। श्रीमन्त अपना हृदय उदार बनावे, त्यागशील बने, निर्धनो के प्रति आंतरिक स्नेह रक्खे, समय पर उनकी सहायता करे, कोई भी व्यवहार ऐसा न करे, जिससे उन्हें अपनी हीनता मालूम पड़े, सब प्रकार से उन्हे साता पहुँचाने का प्रयत्न करे और धन की हो तरह विद्या, बुद्धि और श्रम का महत्व समझे तो बिगड़ती हुई परिस्थिति मे कुछ सुधारा हो सकता है।

(३२)

अन्याय का पैसा अव्वल तो सामने ही समाप्त हो जायगा कदाचित रह गया तो तीसरी पाढ़ी मे दिवालिया बना ही देगा। ईमानदारी का एक पैसा भी मोहर के बराबर है और बेइमानी की मोहर भी पैसे के बराबर नही है।

(३३)

नीति का एक पैसा भी मोहर के बराबर है और अनीति का भंडार भी अनर्थो का भंडार है।

(३४)

अनीति करके कोई सुख नही पा सकता। अनीति द्वारा उपार्जन किया हुआ द्रव्य तो चला ही जाता है, साथ में

प्रतिष्ठा को भी ले जाता है, गाँठ की पूँजी को भी ले जाता है और कभी-कभी प्राणों का ग्राहक भी बन जाता है।

(३५)

अनीति के सौ रुपयो से नीति का एक पैसा भी अधिक सुख, संतोष और शान्तिदायक होता है। नीति की सम्पत्ति आत्मा को सन्तोष प्रदान करती है, जबकि अनीति की कमाई आत्मा को सन्ताप पहुचाती रहती है। नीतिसे अगर एक पैसा तुम्हारे पास आयगा तो वह तुम्हारा होकर रहेगा। अनीति से पाया हुआ विपुल द्रव्य भी तुम्हारा होकर नही रहेगा।

(३६)

दयालु पुरुष धन का अधिक लालच नही करेगा। वह सोचेगा कि ससार मे धन तो परिमित ही है। अगर मैं अपनी वास्तविक आवश्यकता से अधिक इकट्ठा कर लूँगा तो दूसरों को कमी पड़ जायगी। गरीबो को कष्ट उठाना पडेगा। मेरे पास निरर्थक पड़ा रहेगा और दूसरों के पास आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भी नही रहेगा।

(३७)

जिस लोहे के छुरे से बैल काटा जाता है, उसकी निर्जीव चमड़ी से वह लोहा भी भस्म हो जाता है। यह बात भूलना नही चाहिये। आज तुम समझो अथवा न समझो मगर एक दिन समझना पडेगा कि गरीब की हाय व्यर्थ नही

जायगी। गरीबों की हाय में वह आग है कि श्रीमंतों की बड़ी बड़ी हवेलियाँ भी उससे भस्म हो जायगी।

(३८)

आज आपके पास पहले से पैसा बढ़ा ही है, घटा नहीं है। मगर देखना यह है कि आपकी उदारता उसी परिमाण में बढ़ी है अथवा नहीं। अगर आपकी उदारता नहीं बढ़ी तो धन के बढ़ने से आपका क्या हित हुआ? धन के साथ आपकी ममता बढ़ गई इसका अर्थ यह हुआ कि आपका पाप बढ़ गया है। उस धन की सार-संभाल करने की चिन्ता बढ़ गई, व्याकुलता बढ़ गई और आरंभ-समारंभ बढ़ गया। यह सब पाप का ही बढ़ना है। ऐसी संपत्ति से आपका कुछ भी हित नहीं होने वाला है, बल्कि अहित ही है।

(३९)

तू चाहता है मैं अधिक सम्पत्तिशाली होकर सुखी बन जाऊंगा। परन्तु यह तो देखले कि जिनके पास अधिक संपत्ति है वे क्या सुखी हैं? नहीं। वे भी तो सुखी नहीं हैं। वे भी तेरी ही तरह तृष्णा की आग में जल रहे हैं। ऐसी अवस्था में तू कैसे सुखी हो जायगा? सुख का असली साधन तो संतोष ही है। अतएव हे भव्य! अगर तू वास्तव में ही सुखी बनना चाहता है तो संतोष धारण कर।

(४०)

धर्म साधना में धन की तृष्णा बहुत बाधक होती है। परन्तु कभी यह भी सोचते हो कि आखिर इतने धन का क्या करोगे? क्या पाव भर अन्न के बदले बहुमूल्य मोती खोना चाहते हो? अरे पाव भर अनाज, थोडी सी जगह और और आवश्यक वस्त्र तुम्हे चाहिए और उसके बदले तुम दुनिया भर की दौलत को हथियाने के लिये आकाश पाताल एक कर रहे हो? सोचते क्यो नही कि यह सब वृथा है! अपना यह उत्तम जीवन इस जड और विनश्वर सम्पत्ति के पछे क्यो अकारथ खो रहे हो? धन की मर्यादा करलो। मर्यादा कर लोगे तो संतोष आ जायगा। सतोष आ जायगा तो व्याकुलता मिट जायगी। निराकुलता का अपूर्व सुख प्राप्त होगा और तब भावना धर्म की ओर जायगी।

(४१)

तृष्णा तो एक तरह की अग्नि है, जो धन–सम्पत्ति के ईंधन से बुझती नही बढती जाती है।

(४२)

संपत्ति चित्त में शान्ति का स्रोत नही बढाती व्याकुलता की आग सुलगाती है। ऐसी सम्पत्ति के लिये क्यो आत्मा का अहित करते हो?

(४३)

जिनके बाप-दादे गरीब थे, भरपेट रोटियाँ भी नहीं पाते थे, ऐसे लोग लखपति होकर भी भगवान का भजन नहीं करते ! पुद् गलों के लिए चिन्तामणि के सदृश मानव-जीवन को बर्बाद कर रहे हैं । कोई आदमी कौवा को उड़ाने के लिए हाथ का हीरा फैंक दे तो मूर्ख समझा जाता है मगर धन दौलत के लिए जीवन को गँवा देना क्या उससे भी बड़ी मूर्खता नहीं है ?

(४४)

तुम गृहस्थ हो तो मैं नहीं कहता कि तुम पैसा मत कमाओ, किन्तु इस प्रकार नैतिकता से विरुद्ध व्यवहार करके मत कमाओ । पसे के लिए अपना धर्म मत बेचो । पैसा जीवन के लिए है, जीवन पैसे के लिए नहीं है । धन की तृष्णा से अन्धे होकर न्याय अन्याय को मत भूलो । जिस धन के लिए तुम धर्म को भूल रहे हो, वह साथ जानेवाला नहीं है । हाँ धनोपार्जन के लिए तुम जो पाप करोगे वह अवश्य ही तुम्हारे साथ जायगा, किन्तु बाँधा हुआ पाप तुम्हे भव-भव में दुःख देगा ।

(४५)

जीवन और धन में से जीवन ही महत्वपूर्ण वस्तु है । धन जीवन के लिए है, जीवन धन के लिए नहीं है । माना कि जीवन को सुखमय बनाने के लिए गृहस्थ अवस्था में धन की

जरूरत होती है, पर इसका अर्थ यह तो नही है कि तुम धन के लिए अपने सारे जीवन को और समस्त सद् गुणो को ही निछावर कर दो।

(४६)

चाहते हो कि हम धन सम्पन्न बन जाय, पुत्र–पौत्र आदि परिवार वाले बने रहे, सब प्रकार की सुख–सामग्री हमें प्राप्त हो, मगर धर्म की उपेक्षा करते हो। तो यह कैसे हो सकता है ? नीम का रस पीकर मुह मीठा करने की इच्छा किस प्रकार सफल हो सकती है ? तुम धर्म का रक्षण और पालन करोगे तो धर्म तुम्हारा रक्षण और पालन करेगा धर्म से ही सब सुखों की प्राप्ति होगी।

(४७)

धर्म की उपेक्षा करके धन की आराधना करना वैसा ही मूर्खता पूर्ण है, जैसे किसी वृक्ष के मधुर फल पाने के लिए उसके मूल मे पानी न सीच कर पत्तो पर पानी छिटकना !

(४८)

भाई ! समझ ले तेरे पास धन है और तू चाहे तो उसके द्वारा स्वर्ग भी खरीद सकता है और नरक भी खरीद सकता है दोनो मे से क्या चाहता है ? स्वर्ग चाहताहै तो धन को छाती से चिपकाये काम नही चलेगा। उसे दोनो हाथों से खर्च करना होगा। स्वर्ग का मोल चुकाना होगा। गरीबो को दान देना

पड़ेगा, धर्म के कामों में व्यय करना होगा। यदि नरक खरीदना है तो तिजोरियों मे भर रख, जमीन मे गाड़ दे। धन जमीन में गाड़ने के लिए जो गड़हा बनाता है, समझले कि नरक में जाने का रास्ता बना रहा है।

(४६)

भाइयो ! पापी जीव मर जायगा लाखों-करोड़ों की सम्पत्ति छोड़ जायगा, परन्तु उस सम्पत्ति के उपार्जन में जो पाप किये है उन्हें साथ अवश्य ले जायगा। उन पापो का फल भोगने के लिए वह नरक कुँड मे गिरेगा ; वहाँ सारी अकड़ निकल जायगी।

(५०)

जिस धन से देश जाति, समाज और धर्म का भला न हुआ, वह धन वृथा है। ऐसे धनवान का जीवन भी वृथा है। वह उस धन का मालिक नहीं गुलाम है। उसकी जिन्दगी किसी के काम नही आई और उसका धन भी किसी के काम नही आया। तब वह किस मतलब का है ?

(५१)

वह बड़ा आदमी किस काम का जो दूसरे के खातिर पर स्वयं ही खा-पी लेता है। स्वयं ही विनोद कर लेता है। और मौज उड़ा लेता है। सच्चा बड़ा आदमी वही है जो

अपने हर्ष मे दूसरों को सम्मिलित करता है। जो सुख के समय मे दीन–दुखियो का स्मरण करता है।

(५२)

आपका बडप्पन किस काम का है ? घोडे की पूँछ बडी होती है पर वह अपनो ही मक्खियाँ उड़ाती है। अगर आपने अपने पडौसियो का भला नही किया तो आपके बडप्पन का क्या महत्व है ? जगल के पेड की तरह पैदा हुए, जिन्दार हे और नष्ट हो गये, तो किस काम के ? आपने जीवन का क्या ल भ लिया ?

(५३)

अगर इस जन्म मे लक्ष्मी का सदुपयोग न करेगा तो फिर कब करेगा ? यह लक्ष्मी या तो तेरे जीते जी ही तुझे छोड़कर चली जायगी अथवा किसी समय तू इसे छोडकर जायगा। जब यह निश्चित है, और इसमे तनिक भी सदेह नही है तो फिर क्यो सोच–विचार करता है।

(५४)

धन का भंडार भर लेने से भी धन्य नही होगा, प्रतिष्ठा और परिवार बढ़ा लेने से भी जीवन सफल नही बनेगा। सुकृत करने मे हो जीवन की सार्थकता है।

(५५)

धन प्राप्त करने की सार्थकता इसी मे है कि वह परोपकार के काम में आये। जो धन परोपकार के काम मे नही आता वह पुण्य का कारण न बनकर पाप का ही कारण बनता है। उससे आत्मा का पतन होता है।

(५६)

धनवानो को अनुचित आदर मिलने के कारण समाज मे धन की पूजा बढ़ती जाती है और गुणो की प्रतिष्ठा घटती जाती है।

(५७)

धनी था तब वही था और निर्धन हो गया तो भी वही है। उसके मनुष्यत्व मे कुछ अंतर नही पड़ गया है। फिर क्यों लोगो की दृष्टि मे इतना परिवर्तन हो जाता है? इससे तो यही प्रकट होता है कि वास्तव मे यह अन्धी दुनिया मनुष्य की कद्र नही करती, मानवीय सद्गुणों का मूल्य नहीं जानती इसे एक ही वस्तु का मूल्य मालूम है और वह धन है, और स्वार्थ का मूल्य है। जब देखता है कि इनसे कोई स्वार्थ सिद्ध न होगा तो एकदम आंखें बदल लेता है। ऐसे स्वार्थमय संसार पर जिनका अनुराग है उन्हें क्या कहा जाय।

(५८)

भाइयो ! मनुष्य का असली मूल्य पैसे से नही है। किसी के व्यक्तित्व को पैसे से मत देखो। यह देखो कि उसमे कितनी उदारता है, कितनी दयालुता है, कितनी सरलता है और कितनी क्षमा है ? जिसके जीवन में समभाव की जागृति जितनी अधिक हो, वह उतना ही अधिक उच्चकोटि का व्यक्ति है।

(५९)

लोग पैसे का कितना आदर करते है, उतना अगर मानवीय सद्गुणों का आदर करें तो संसार स्वर्ग बन जाय।

(६०)

सम्पत्ति के अभाव से कोई दरिद्र नही होता, किन्तु जिसकी तृष्णा बढ़ी हुई है, वही वास्तव मे दरिद्र है, भले ही वह करोड़पति क्यो न हो ?

(६१)

जिस वैभव के लिए मनुष्य इतना गिर जाता है, जिस वैभव के पीछे मनुष्य मनुष्यता को भी गंवा बैठता है और राक्षस बन जाता है, उस वैभव को धिक्कार ! लाख बार धिक्कार है !

(६२)

जिसने धर्म रूपी धन का सचय किया है, वही करोड़-पति है। उसके समान कोई करोड़पति नही है। आगे धन साथ नही चलेगा धर्म ही चलेगा।

(६३)

धनी जिस धन से अपनी प्रतिष्ठा समझता है, जिसमें अपना गौरव मानता है, समझदार लोग उससे जीवन का अधः पतन देखते है।

(६४)

अज्ञान मनुष्य जिसे अपने जीवन का सर्वस्व समझता है, जिस सम्पदा के लिए धर्म और नीति का भी त्याग करते सकोच नही करता, यहाँ तक कि मरने को भी तयार हो जाता है, ज्ञानी उसी सम्पत्ति को तुच्छ और निस्सार समझते है! ऐसी सम्पत्ति का जो भी मूल्य है, वह केवल मिथ्या कल्पना के ही क्षेत्र मे है। वास्तविकता के क्षेत्र में उसकी कोई कीमत नही है।

(६५)

यदि आपकी मानसिक स्थिति ऐसी ऊची हो गई है कि आप धन के लिए धर्म को नही त्याग सकते और धन आपको धूल के समान प्रतीत होने लगा है तो आप सम्यग्दृष्टि है, शुक्ल पक्षी है।

(६६)

गरीब अगर अपनी गरीबी में संतोष मानकर चलता है और जिस किसी उपाय से धनवान् बनने की लालसा नहीं रखता तो वह धनवान् से तनिक भी कम भाग्यशाली नहीं है।

(६७)

प्राचीन काल मे वीरता का सत्कार होता था, आज धन का सत्कार होता है ? देश का यह पतन क्या सामान्य पतन है ?

(६८)

आज धन के सम्बन्ध मे प्रतिस्पर्द्धा होने के कारण और धन को ही प्रतिष्ठा मिलती देखकर लोग विवाह-शादी जैसे अवसरो पर भी धन को ही महत्व देते है। कन्या का पिता चाहता है कि मुझे लखपति जँवाई मिले और लडके का पिता चाहता है कि मुझे कोई ऐसा सम्बन्धी मिले जो धन से मेरा घर भर दे ? इस तरह दोनो की नजर धन पर ही होती है। इससे बेचारे गरीबो को कितनी परेशानी होती है, इस ओर किसी का ख्याल नही जाता। योग्य से योग्य लड़के कुवारे फिरते है और धनवान् बूढे शादियाँ करके अपने बुढापे को लजाते है ? जिस देश की और जिस जाति की ऐसी दशा हो उसका उत्थान कैसे होगा ?

(६९)

माता-पिता को सोचना चाहिये कि एक मात्र धन ही किसी के जीवन को सुखी और उन्नत नही बना सकता। शिक्षा, सुसस्कार, धार्मिकता और नैतिकता आदि सद्गुण जिसमे विद्यमान हो, विवेकवान् माता-पिता उसी वर को पसद करते है। वे यह ध्यान मे रखते है कि हमे धन के साथ

(६३)

धनी जिस धन से अपनी प्रतिष्ठा समझता है, जिसमें अपना गौरव मानता है, समझदार लोग उसमें जीवन का अधः पतन देखते है ।

(३४)

अज्ञान मनुष्य जिसे अपने जीवन का सर्वस्व समझता है, जिस सम्पदा के लिए धर्म और नीति का भी त्याग करते संकोच नही करता, यहाँ तक कि मरने को भी तयार हो जाता है, ज्ञानी उसी सम्पत्ति को तुच्छ और निस्सार समझते है ! ऐसी सम्पत्ति का जो भी मूल्य है, वह केवल मिथ्या कल्पना के ही क्षेत्र मे है। वास्तविकता के क्षेत्र मे उसकी कोई कीमत नही है ।

(६५)

यदि आपकी मानसिक स्थिति ऐसी ऊँची हो गई है कि आप धन के लिए धर्म को नही त्याग सकते और धन आपको धूल के समान प्रतीत होने लगा है तो आप सम्यग्दृष्टि है, शुक्ल पक्षी है ।

(६६)

गरीब अगर अपनी गरीबी से सन्तोष मानकर चलता है और जिस किसी उपाय से धनवान् बनने की लालसा नही रखता तो वह धनवान् से तनिक भी कम भाग्यशाली नहीं है ।

(६७)

प्राचीन काल मे वीरता का सत्कार होता था, आज धन का सत्कार होता है ? देश का यह पतन क्या सामान्य पतन है ?

(६८)

आज धन के सम्बन्ध मे प्रतिस्पर्द्धा होने के कारण और धन को ही प्रतिष्ठा मिलती देखकर लोग विवाह-शादी जैसे अवसरो पर भी धन को ही महत्त्व देते है। कन्या का पिता चाहता है कि मुझे लखपति जँवाई मिले और लडके का पिता चाहता है कि मुझे कोई ऐसा सम्बन्धी मिले जो धन से मेरा घर भर दे ? इस तरह दोनो की नजर धन पर ही होती है। इससे बेचारे गरीबो को कितनी परेशानी होती है, इस ओर किसी का ख्याल नही जाता। योग्य से योग्य लडके कुवारे फिरते है और धनवान् बूढे शादियाँ करके अपने बुढापे को लजाते है ? जिस देश की और जिस जाति की ऐसी दशा हो उसका उत्थान कैसे होगा ?

(६९)

माता-पिता को सोचना चाहिये कि एक मात्र धन ही किसी के जीवन को सुखी और उन्नत नही बना सकता। शिक्षा, सुसस्कार, धार्मिकता और नैतिकता आदि सद्गुण जिसमे विद्यमान हो, विवेकवान् माता-पिता उसी वर को पसद करते है। वे यह ध्यान मे रखते है कि हमे धन के साथ

अपनी कन्या का विवाह नहीं करना है, बल्कि मनुष्य से नाता करना है और इसी लिये वे धन से किसी को योग्य नहीं समझ लेते, बल्कि सद्गुणों से ही योग्यता की जांच करते हैं।

(९०)

बाप से बेटे को जो धन मिलता है उसकी क्या कीमत है? वह धन तो उलटा अनर्थ का कारण होता है। वह ज्यादा हो गया और धर्म धन न हुआ तो मनुष्य क्या करेगा। मस्ती में पड़ा रहेगा और ब्रान्डी पीएगा और अण्डे चूसेगा। इस प्रकार पौद्गलिक धन आत्मा को नरक में ले जाने का ही साधन है। इसके विपरीत है सद्गुरु के द्वारा प्रदान किया हुआ धर्म धन जो इस लोक को भी सुधारता है और परलोक को भी सुधारता है।

(९१)

भाइयो! धन का भंडार या भरी हुई तिजोरियां छोड़ जाने से तुम स्मरणीय नहीं बनोगे। उस धन को पाकर तुम्हारे उत्तराधिकारी अगर धनाचारी हो गये तो लोग तुम्हें भी कोसेंगे। इसी प्रकार सात मंजिला महल बना देने से भी तुम गणना के योग्य नहीं बन सकोगे। भूकम्प का एक ही धक्का उसे भूमिसात् बना देगा। नहीं तो काल उसे खण्डहरों में मिला देगा। पुत्र-पौत्र आदि का बड़ा परिवार भी तुम्हारा जीवन सार्थक नहीं बना सकता। संसार में कोई धन गुणों

सच्चा स्मारक नही बन सकती । अगर तुम चाहते हो कि ससार तुम्हारा नाम ले, तुम स्मरणीय समझे जाओ तो शुद्ध चेतना प्राप्त करो । शुद्ध चेतना अर्थात् विवेक या सम्यग्दर्शन पाकर तुम्हारी शक्ति तुम्हे समीचीन पथ की ओर ले जायगी और आखिर गन्तव्य स्थान पर पहुँच जाओगे ।

(७२)

रेहट की घड़ियाँ पानी से भर जाती है और फिर थोडी-सी देर मे ही खाली हो जाती है ! खाली होकर वह फिर भर जाती है । इस प्रकार भरने और खाली होने का क्रम चालू ही रहता है ! धन की भी यही दशा है । वह कभी आता है और कभी चला भी जाता है चला जाता है तो आ भी जाता है । आज जो दरिद्र है वह कल ही सपत्तिशाली बन सकता है और आज जो सम्पत्तिशाली है वही कल दाने-दाने के लिए मुँह ताज हो सकता है ! अतएव धनवानो का कर्तव्य है कि जब उनकी दशा अनुकूल हो तब वे धन का दुरुपयोग न करे । गरीबो को सताएँ नही, बल्कि अपने धन से उनकी सहायता करे ।

(७३)

कोई भोला मनुष्य आपके ऊपर विश्वास करता है । आप चाहे तो सहज ही उसे ठग सकते है । मगर आप उसे ठगना उचित नही समझते और सोचते है कि— 'अरे आत्मा' क्या सोना-चाँदी आदि सम्पत्ति तुझे छाती पर रखकर ले

जानी है ? इस दुनियाँ की चीजे तो इसी दुनियाँ मे रह जायगी फूटी कोड़ी भी साथ जाने वाली नही है ! फिर वृथा ही इस सम्पत्ति के लिए क्यो पाप कर्म करता है ? क्यो अपनी आत्मा को पाप से कलुषित बनाता है ? जब पाप कर्मो का उदय होगा तब पाप से उपार्जित की हुई सम्पत्ति सुख प्रदान नही कर सकेगी, वह उलटा दुःख का ही कारण बनेगी ।' ऐसा सोचने वाला अपनी दया करता है ।

(७४)

पुण्य का उपार्जन करोगे तो आगामी जीवन मे भी सुख पाओगे । छल कपट से धन कमावोगे तो पाप ही पल्ले पडेगा । धन साथ नही जायगा, पाप गले पड़ जायेगा । अतः निष्कपट बनो, सरल बनो ।

(७५)

धन-सम्पत्ति को साथ ले जाने का एक ही उपाय है और वह यह कि उसका दान कर दो, उसे परोपकार मे लगादो खैरात कर दो ।

(७६)

वैश्य लोग अपने धन की रक्षा करने में बहुत कुशल होते है । मगर खेद है कि वे यह नही समझते कि उनका वास्तविक धन क्या है ? रुपया पैसा, महल आदि को तुमने धन समझा है, परन्तु वह तुम्हारा सच्चा धन नही है । वह

पौद्गलिक धन तुम चेतन का धन कैसे हो सकता है ? तुम्हारा असली धन चरित्र है। अत. तुम्हे चरित्र रूपी धन की रक्षा करनी चाहिये।

(७७)

भाइयो ! कोई भी व्यक्ति लाखो और करोड़ो की सम्पत्ति इकट्ठी कर सकता है। किन्तु पुण्य के बिना वह भोग नही सकता। खेत मे किसान अडवा खडा कर देते है। वह न स्वयं खाता है और न पक्षी आदि को खाने देता है। इसी प्रकार कृपण जन न खुद खा सकता है और न दूसरो को खाने देता है। वह धन का पहरेदार मात्र है। उसकी रख-वाली करना ही उसका काम है।

(७८)

कुछ लोग माला जपते है और उसमे भावना करते है हे भगवान् सारे गॉव के ग्राहक मेरी ही दुकान पर आ जाएँ। भगवान् ग्राहको को घेर कर तेरे घर लाएगे ! तूने भगवान् को अपना नौकर समझ रक्खा है ! अरे लोभी सब ग्राहक तेरी दुकान पर आ जाएगे तो दूसरों के बाल-बच्चे क्या खाएगे ?

(७९)

लक्ष्मी प्राप्त करने के लिए पुण्य की आवश्यकता है। पुण्य का उपार्जन भगवान् की स्तुति और भक्ति करने से होता

है। जो भगवान् की भक्ति करेगा, लक्ष्मी उसकी दासी बन जाएगी। जसे परछाई से विमुख होकर आप चलते है तो परछाई आपका पीछा करती है, उसी प्रकार आप लक्ष्मी से विमुख होकर भगवद्-भक्ति करेगे तो लक्ष्मी आपका पीछा करेगी। इसके विरुद्ध जैसे परछाई को पकड़ने के लिए दौड़ने वाला व्यक्ति कभी अपनी परछाई को नही पा सकता, उसी प्रकार लक्ष्मी-लक्ष्पी करने वाला और उसके पीछे-पीछे मारा-मारा फिरने वाला पुरुष लक्ष्मी नही पा सकता।

(८०)

आखिर सभी को एक दिन मरना है फिर धनके लिए यह अनीति क्यो की जानी चाहिये ?

(८१)

आत्मा के स्वाभाविक गुण ज्ञान दर्शन आदि भाव लक्ष्मी आत्मिक सम्पत्ति है। वह सदैव आत्मा मे रहती है। उसे बाहर से लाने की आवश्यकता नही पड़ती। उसे प्राप्त करने के लिए सिर्फ इतना ही करना पड़ता है कि आत्मा पर पड़े पर्दो को प्रयत्न करके हटा दिया जाय। यह सम्पत्ति एकान्त सुख देनेवाली है और सदैव सुख देनेवाली है। परलोक मे भी वह साथ देती है। वह अनन्त और अक्षय आनन्द प्रदान करने वाली है।



-: विषय-भोग :-

(१)

संसार मे जितने भी अनर्थ हो रहे है, उन सब के मूल में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप मे, स्पष्ट या अस्पष्ट रूप मे भोगों की अभिलाषा ही है। सासारिक भोग ही सब अनर्थो की खान है।

(२)

विषय भोग और उनके साधनों की आकांक्षा ही असल मे दुःख है और उस आकाक्षा का त्याग सुख है। ज्यों-ज्यो जीवन निवृत्तिमय बनता जायगा त्यो-त्यो सुख की वृद्धि होगी। शान्ति निराकुलता मे है, व्याकुलता मे नही है।

(३)

कुत्ता समझता है कि वह जिस हड्डी को चूस रहा है उसमे से खून आ रहा है। उस बेचारे को क्या पता कि जिस खून को वह हड्डी मे समझ रहा है, वह तो उसका अपना ही है ? इसी भाँति विषयासक्त जीव भोगो मे सुख की कल्पना करता है, जबकि सुख आत्मा मे ही है। मुर्दे के मुँह मे षट्रस भोजन डाल दो क्या वह उसका रसास्वादन करके सुख प्राप्त कर सकेगा ? कदापि नही।

(४)

असल बात यह है कि अधिकांश लोग वास्तविक सुख के रूप को ही नहीं समझते हैं। जैसे कुत्ता प्राप्त हड्डी को चाबता है। हड्डी को चबाने से उसके मसूढ़ों मे से रुधिर निकलता है और वह उस रुधिर को हड्डी मे से निकलने वाला समझ कर चाटता और आनन्द मनाता है। और वह यह समझता है कि यह स्वाद हड्डी मे से आ रहा है। इसी प्रकार अज्ञानी जीव समझ रहे है कि सुख भोगों मे है। परन्तु उनकी धारणा मिथ्या है, सुख पुदगल का गुण ही नहीं है। वह तो आत्मा का गुण है और आत्मा मे ही रहता है। आत्मा के सुख गुण के विकार को सुखाभास को लोग पुद्गल जनित सुख समझते है।

(५)

भाइयो ! आँखों मे खुजली चलने पर मनुष्य खुजाल लेता है और कोई मनाई करता है तो भी नहीं मानता। उस समय खुजालने मे ही उसे सुख मिलता है। किन्तु बाद में जब जलन होती है तो पछताता है। इसी प्रकार यह भोग थोड़ी देर मजा देते है, किन्तु बाद में बुरी तरह पछताना पड़ता है।

(६)

कलाकंद मे संखिया डाल दिया गया हो तो खानेवाले को पहले तो आनद आता है, किन्तु थोड़ी ही देर बाद सारे

शरीर मे ऐठन आरम्भ होती है और प्राणों से हाथ धोना पडता है। यही बात इन्द्रियों के भोगो के सम्बन्ध मे है।

(७)

भोगो मे उतना ही सुख है जितना तलवार की धार पर लगे हुए शहद को जीभ से चाटने से होता है। क्षण भर मिठास मालूम होती है परन्तु जीभ कटने के कारण लम्बे समय तक दुःख उठाना पडता है। भोग भोगने से भी इस लोक मे दुःख ही दुःख होते हैं।

(८)

विष और विषयो मे अन्तर है तो यही कि विष एक बार मारता है और विषय अनेक बार मारते है। कामभोगो की अधिक विषाक्तता प्रकट करने के लिए शास्त्रकार कहते है कि काम सर्प के समान है। जैसे सर्प भयकर होता है और उससे दूर रहने मे ही कल्याण है, इसी प्रकार विषय भी आत्मा के लिये भयकर है और उनसे दूर रहने मे ही कल्याण है।

(९)

जेसे मन भर का पत्थर गले मे बाँधकर डुबकी लगाने वाला पुरुष तल भाग मे जाकर अपने प्राण गॅवाता है, उसी प्रकार विषय भोगो की गठरी अपने सिर पर लादने वाला मनुष्य पाताल लोक की ओर ही प्रयाण करता है।

(१०)

यह जीव भोगों को नहीं भोगता है परन्तु भोग ही जीव का भोग लेते हैं। भोगों के लिए अपना जीवन निछावर करने वाले भोग नहीं भोगते, वास्तव में भोग ही उसके जीवन को भोगकर समाप्त कर देते हैं। जीव सोचता है कि मै पाँच वर्ष मे हजारपति से लखपति बन गया मगर धन कहता है मैने इसके अनमोल जीवन के पाँच वर्ष खत्म कर दिये।

(११)

संसार मे जितने भी संयोग हैं, वे सब दुःख उत्पन्न करने वाले है। थोड़े से समय का संसार का सुख बहुत लम्बे समय तक दुःख देता है और वह सुख भी दुःखों से मिश्रित है, जैसे जहर मिला हुआ अमृत ! संसार के सुख को ज्ञानी जन इसी लिए सुख नही मानते।

(१२)

विषय भोगो से मिलने वाला सुख वास्तव मे सुख नहीं सुखाभास है। सच्चा सुख तो तृप्ति मे है और विषयभोगो का सर्वथा त्याग करके एकान्त निराकुल अवस्था मे हो तृप्ति हो सकती है। अतएव भोगजन्य सुख को सुख समझना कोरा भ्रम है, दुःखों को निमंत्रण देना है।

(१३)

जीव का स्वरूप अनन्त आनंद है। मगर जीव को अपने स्वरूप का वास्तविक बोध नहीं है। अतएव वह विषय

जन्य आनन्द को ही अपना ध्येय मान लेता है और उसी को प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील रहता है। वास्तव मे विषय सुख, सुख नही सुखाभास है। वह सुख सरीखा प्रतीत होता है। मोही जीव इसी सुखाभास के प्रलोभन मे फँस कर अपने जीवन को वृथा गँवा देता है।

(१४)

भाइयो ! ससार के यह सब सुख, दु ख के जनक हैं। जो सुख दु.खो के जनक हो, वे वास्तव मे दु.ख रूप ही है। जितने भी इन्द्रियो के विषय है, सब का परिणाम एक मात्र दु ख है।

(१५)

जो जीव विषय भोगो मे आसक्त होकर भविष्य की परलोक की उपेक्षा करते है, वे भी मृत्यु के समय और पश्चात् घोर सकट मे पड़ते है।

(१६)

यह भोग रोग के भडार है। चेतना को मूढ बना देने वाले, आत्मा को पतित बनाने वाले, जीव को अभिशापमय बना देने वाले और समस्त आपदाओ को लाने वाले है। भोगो में आसक्त हुआ जीव अपने कर्तव्य को भूल जाता है। उसका विवेक नष्ट हो जाता है। वह अपनी आत्मा की ओर झाँक कर भी नही देख सकता।

(१७)

भोग चेतना को जडवत् बना देते है। भोगों का संयोग भी दु:खदायी है और उनका वियोग होने पर भी शोक और पश्चात्ताप होता है। भोगो की बदौलत भयानक व्याधियाँ चैट जाती है। विश्वास न होतो अस्पताल में जाकर पूछ आओ। वहाँ कितने ही लोग भोग के फलस्वरूप नरक-सी यन्त्रणाएँ भोगते हैं। कई लोग प्रकट रूप से कुछ कह नही सकते, मगर एकान्त मे बैठ कर रोते हैं।

(१८)

आग मे घी डाला जायगा तो वह शान्त नही होगी। उसकी ज्वालाएँ अधिकाधिक प्रचण्ड ही होती जायगी, इसी प्रकार भोग भोगने से अन्त.करण मे तृप्ति नहीं हो सकती, शान्ति नही हो सकती, बल्कि अशान्ति की ही वृद्धि होगी। फिर शान्ति पाने की इच्छा से अशान्ति की राह पर क्यों चलना चाहिए? धूप से घबरा कर आग की लपटो मे कूदना अगर मूर्खता है तो सच्चे सुख को प्राप्त करने के लिए भोगो के मार्ग पर चलना भी मूर्खता ही है।

(१६)

भोग का स्वभाव ही अतृप्ति असन्तोष बढ़ाना है अतएव उससे सब्र कैसे आ सकती है। कोई सोचे कि मै जब सम्राट या बादशाह बन जाऊंगा तो खूब भोग-भोग कर तृप्ति संपा-

दित कर लूगा, किन्तु अरे भोले जीव बादशाह के दिल से तो पूछ देख कि उसका क्या हाल है। उसे सन्तुष्टि मिल सकी है या नही ?

(२०)

संसार का ऐसा कौन–सा पुद्गल है जिसका उपभोग तूने नही किया है ? विश्व के कण–कण को अनन्त–अनन्त बार अनन्त–अनन्त रूप मे तूने भोग लिया है। अब क्या शेष रह गया भोगने को ? यदि अब तक तुझे तृप्ति नही हुई तो क्या अब इस जीवन मे भोगने से तृप्ति हो जायगी ? रे अज्ञानी जीव ! अपने मोह का त्याग कर। क्यो मन का नचाया नाचता है ? क्यो इन्द्रियो का गुलाम बन कर अपने भविष्य को संकट-मय बनाता है ? यह विषय क्षण भर विकृत आनन्द देगे तो चिरकाल पर्यन्त घोर यातनाओ के कारण बन जाएँगे।

(२१)

भोगोपभोगो मे सुख होता तो विवेकशील पुरुष इनका त्याग करके एकान्त वनवास के कष्टो को क्यो स्वेच्छा पूर्वक सहन करते ? वस्तुत. किसी भी पौद्गलिक पदार्थ मे सुख नही है और न वह आत्मा को सुखी बना सकता है, क्योंकि सुख आत्मा का ही स्वाभाविक धर्म है। जब आत्मा पर पदार्थो से विमुख होकर अपनी ओर उन्मुख होता है और अपने ही सहज स्वरूप मे रमण करता है, तब आत्मा का सुख गुण आविर्भूत हो जाता है।

(२२)

आज किसी अंधेरे कमरे मे बंद कर दिया जाय और दरवाजे बद हों तो पांच मिनिट भी नही रहा जाता मगर नौ मास तक गर्भवास कैसे किया ? आज उन सब दुःखो को भूल गये हो, इसी से विषय-वासना में फॅस कर अपने जीवन को सफल समझ रहे हो परन्तु याद रखना यह पुन. पुन गर्भ मे उत्पन्न होने का मार्ग है। जिस रास्ते से गये हो वह बहुत दु.खो से परिपूर्ण है। उसी पर क्यों फिर जाते है ?

(२३)

भाइयो ! विषय वासना का दुःख थोडा मत समझो इसके पीछे आज हजारो लाखो नही, करोडो जीवन वर्बाद हो रहे है। बड़े-वडे प्रतिभाशाली लोग इस चक्कर मे पड़कर मूर्ख बन जाते है। कितने ही उदीयमान नक्षत्रो का विषय वासना ने उदित होने से पहले ही अन्त कर दिया है। विषय वासना वह पिशाचिनी है कि न जाने कितनो को अपना भक्ष्य वना चुकी है।

(२४)

विषयो मे हलाहल विष भरा है। ज्यादा सिनेमा देखेगा तो आंखो की रोशनी बन्द हो जायगी और ज्यादा मनोज्ञ गंध सूंघेगा तो नाक वद हो जायगी। ज्यादा मीठा खाएगा तो बीमारियाँ धर दबाएँगी। अधिक स्पर्श सुख को

अनुभव करेगा तो निर्बल, निस्तेज और मुर्दार होकर अकाल मे ही काल के गाल मे चला जायगा। इसलिए ज्ञान की लगाम लगा कर इन घोड़ो को रोक, ऐसा किये बिना ये रुकने वाले नही है।

(२५)

ज्ञानी पुरुष की आत्मा अन्दर ही अदर पुकारने लगती है कि हलाहल विष का भक्षण करना कदाचित अच्छा हो सकता है क्योकि उससे उसी एक भव का नाश होता है, जिसमे विष भक्षण किया गया है। परन्तु यह भोगो का विष तो अनन्त भवो को बिगाडने वाला है। इसके सेवन से असंख्य और अनन्त बार मौत का शिकार होना पड़ता है। अतएव यह भोग–विष हलाहल विष की अपेक्षा अनन्तगुणा अधिक सहारक है।

(२६)

भोगोपभोगो का मार्ग बडा ही चक्करदार है, विषम है, और नरक एव निगोद तक जाने वाला है। इस मार्ग पर आत्मा अनादि कालसे चल रहा है, मगर उसे न शान्ति मिली है, न तृप्ति मिली है, न सुख मिला है, न संतोष मिला है ! इतना ही नही, उलटी अशान्ति, अतृप्ति, दुःख एवं असन्तोष का ही प्राप्ति हुई है ! इन भोगोपभोगो ने आत्मा के प्रभुत्व को लुप्त कर दिया है, ऐश्वर्य को मिटा दिया है। अनन्त-आनन्द, जो आत्मा का नैसर्गिक गुण है इन्ही भोगो के कारण

से आत्मा को नही प्राप्त हो रहा है। ससारी जीव इनकी तृष्णा मे पड़ कर अपने ज्योतिर्मय-अनन्त-प्रकाशमय-स्वरूप को भूल गया।

(२७)

जबतक आत्मा अपने शुद्ध स्वभाव मे अनभिज्ञ है, तभी तक वह बाह्य पदार्थो मे सुख समझता है। जब आत्मा के असीम स्वाभाविक सुख का अक्षय खजाना उसे नजर आता है तो बाह्य सुख उसे उपहासास्पद जान पड़ता है। उसे भोगना उसे नादान छोकरों का खेल सा जान पड़ता है।

(२८)

राग और द्वेष रूपी विकारो को जीतना ही साधना है। जितने-जितने अशों मे इन विकारों पर विजय प्राप्त होती जाती है, उतने ही उतने अशो मे साधना पकती जाती है, और जब पूरी तरह पक जाती है अर्थात् पूर्णता पर पहुच जाती है तो पूर्ण समभाव प्रकाशित हो जाता है।

(२९)

मनुष्य जब आत्मा के परम चिन्मय स्वरूपको पहचान लेता है, तब उसे स्वभावतः विपयो से विरक्ति हो जाती है। अतएव विषय वासना से बचने के लिए आत्मज्ञान प्राप्त करना ही सच्चा उपाय है। निरन्तर भावना और अभ्यास से ही विषयों की वासना नष्ट की जा सकती है।

(३०)

जब कोई मनुष्य जान लेता है कि यह विषधर सर्प है तो क्या उससे खेल सकता है ? उसके समीप भी खडा रह सकता है ? कदापि नही। सर्प का भान होते ही वह दूर भाग खडा होता है। यही सच्चा जानना है। इसी प्रकार जिसने ससार के भोगोपभोगो का असली स्वरूप समझ लिया है, वह किस प्रकार उन्हे ग्रहण कर सकता है।

(३१)

भोगलोलुप लोग बाद मे कितना ही पश्चत्ताप क्यों न करे, अपने कर्मो का फल भुगते बिना छुटकारा नही पा सकते अत-एव हे मनुष्य ! तूने अन्य सब प्राणियो से विशिष्ट बुद्धि पाई है, तुझे विवेक भी प्राप्त हे, तू अपने भविष्य के विषय मे विचार कर। सोच समझ कर कदम उठा। फूँक–फूँक कर चल। आँखे रहते अधा क्यो वनता है ? जान वूझ कर क्यों आग मे पड़ता हे ?

(३२)

भाइयो ! ससार मे बधन तो अनेक है किन्तु विषय भोग के बन्धन के समान और कोई बधन नही है। जिसने इस बधन को तोड कर फैक दिया है, समझलो उसने सभी बन्धनो को तोड फेकने की तैयारी कर ली है। अन्य बन्धनो से मुक्ति पाना उसके लिए सरल हो जाता है। अतएव अगर आत्मा का परम कल्याण चाहते हो तो, विषय–वासना को जड़ को उखाड़कर फैकने का प्रयत्न करो।

(३३)

भोग का रोग बड़ा व्यापक है। इसमें उड़ती चिड़ियाँ भी फँस जाती हैं। अतएव भोग के रोग से बचने के लिये सदा प्रयत्नशील रहना चाहिये और कभी चित्त को गृद्ध नहीं होने देना चाहिये।

(३४)

पापों से बचने का सब से उत्तम उपाय अपनी इन्द्रियों पर काबू करना है। जैसे कछुआ अपने अंगों और उपांगो को संकुचित कर लेता है तो उसके ऊपर शत्रु का प्रहार सफल नहीं होता इसी प्रकार जो मनुष्य अपनी इन्द्रियों को वश में कर लेता है, उस पर पापों का जोर नही चलता। जो कछुवे की भाँति इन्द्रियों को गोपन करके रखता है, अन्तःकरणो मे बुरे विचार नही आने देता और दूसरों का दिल दुखाने वाली भाषा का भी प्रयोग नही करता, वह आत्मा को मोक्ष मे ले जायगा।

(३५)

इन्द्रियों पर काबू रखने का अर्थ यह नहीं है कि कानों से सुनना बन्द कर लो, आँखों से देखना बन्द कर दो, आंखे फोड़ लो या उन पर पट्टी बांधे फिरो, नाक से सूघना बन्द कर दो, जीभ से स्वाद लेना छोड़ दो और स्पर्शनेन्द्रिय से किसी भी चीज को छूना त्याग दो। नही; शास्त्रकारों का आशय यह

नही है ; ऐसा करने से जीवन-निर्वाह नही हो सकता । इन्द्रियों पर काबू रखने का अर्थ यह है कि मनाज्ञ अर्थात् रुचिकर समझं जाने वाले पदार्थों पर राग मत करो और अमनोज्ञ अर्थात् अरुचिकर समझी जाती वस्तुओ पर द्वेष भाव धारण मत करो ।

(३६)

विषय परित्याग का अर्थ यह नही है कि आप किसी भी वस्तु का स्पर्श न करें, किसी चीज को जीभ से न छूने दे, नाक बन्द कर रखे, आँखो पर पट्टी बाध कर रहे और कानो से कोई भी शब्द न सुने । विषयो के परित्याग का अर्थ यह है कि मनोज्ञ और अमनोज्ञ विषयो मे राग-द्वेष न किया जाय । प्रत्येक अवस्था मे समभाव मे रमण करना और भले बुरे इन्द्रियो मे विषम भाव धारण न करना, यही विषय प्रमाद के त्याग का अर्थ है ।

(३७)

नदी मे आया हुआ वेग बाढ का रूप धारण करके अनेक अनर्थ उत्पन्न कर देता है । मगर चतुर इंजीनियर बाँध बना कर और नहरे निकाल कर जब उस वेग को शान्त कर देते है या दूसरी तरफ मोड़ देते है तो वही लाभदायक बन जाता है । यही बात यौवन के प्रबल वेग के विषय मे भी समझो । विवेकवान् व्यक्ति यौवन के प्रबल वेग की दिशा बदल देते है । भागोपभोगो की दिशा से हटा कर उसे आत्म-कल्याण

की दिशा मे ले जाते है। तब वह अकल्याण के बदले लोकोत्तर कल्याण का करण बन जाता है।

(३८)

याद रखो, रेती का लड्डू बना कर दीवार पर मारोगे तो रेती चिपकेगी नही, किन्तु चिकनी मिट्टी का लड्डू वही चिपक कर रह जाएगा। तुम्हारे चित्त मे भोगो की स्निग्धता होगी तो चौरासी के चक्कर मे पड़े रहोगे और भोगों के प्रति रूक्ष-वृत्ति होगी तो चक्कर मे नही पड़ोगे।

(३९)

ज्ञानी पुरुषों को पौद्गलिक सुख फीके और निस्सार प्रतीत होते है। उनकी रुचि उनको भोगने की नही होती। यद्यपि वह गृहस्थावास मे रहता है और सासारिक कार्य भी करता है, फिर भी उनमे निमग्न नहीं होता, लिप्त नही होता जल मे कमल की भाँति अलिप्त-रह कर ही वह दुनियादारी का व्यवहार करता है।

(४०)

इन्द्रियों के विषय इन्द्र के समान आत्मा को क्रीत दास बनाने वाले है।

(४१)

संसर्ग से वासना की वृद्धि होती है।

(४२)

वासनाएँ बढाने से बढती और घटाने से घटती है। भोग भोगने से तृप्ति हो जायगी, यह कल्पना विपरीत है। भोग भोगने से अतृप्ति ही बढती है—कभी तृप्ति नही होती। तृप्ति होती तो कभी की हो गई होती। अनन्त जन्मो मे जो तृप्ति नही हुई, वह अब कुछ वर्षो मे कैसे हो जायगी ?

(४३)

इन्द्रिय विजय का मार्ग सम्पत्ति का मार्ग है। अर्थात् यदि तू अपनी इन्द्रियो पर विजय प्राप्त कर लेता है तो तुझे इसी लोक मे शान्ति, सन्तोष और निराकुलता रूप परम सम्पत्ति प्राप्त होती है और परलोक मे दिव्य सुख की प्राप्ति होगी।

(४४)

ससार का समस्त विषय जनित सुख परावलम्बी, तुच्छ और अनुपादेय है। साथ ही क्षणिक भी है। स्वेच्छा—पूर्वक इसका परित्याग करके परमात्मा का भजन करने से वचना-गोचर आनन्द प्राप्त होता है। उसके फलस्वरूप मोक्ष का अमर सुख मिलता है।

(४५)

लोहे के ऊपर कितना ही वजनदार पत्थर पटको, लोहा फैलता नही लेकिन उसी को आग मे रख दिया जाय तो गल—

कर पानी–पानी हो जाता है, इसी प्रकार मजबूत से मजबूत मन वाले भी खराब निमित्त मिलने पर खराब हो जाते है। अतएव जो मन का निग्रह करना चाहते है, उन्हे प्रतिकूल सयोगों से सदैव बचते रहना चाहिए।

(४६)

लोग प्रेम के नाम पर बहुत भ्रम मे है। वे समझते है कि विषय वासना ही प्रेम है। किसी भी ऐरी–गैरी को घर मे डाल लेते है कि प्रेम हो गया। परन्तु कहाँ प्रेम की सात्विकता और पवित्रता और कहाँ वासना की गन्दगी ! शुद्ध सहज एव सात्विक स्नेह अगर सुधा के समान है तो विषयानुराग विष के समान है। दोनों मे प्रकाश और अंधकार के समान अतर है।

(४७)

जब तक दुविधा है तब तक पूर्ण आत्म–निष्ठा नही हो सकती। संसार के दु:ख भी चाहो और मोक्ष की कामना भी करो तो यह नहीं बन सकता।

(४८)

कामना मात्र त्याज्य है। चाहे वह इहलौकिक हो अथवा परलौकिक। कामना वह विष है जो धर्माचरण के अमृत को भी विषक्त बना देता है। अतएव उसका त्याग करना अत्यन्त आवश्यक है।

—: कर्म-फल :—

(१)

कार्मण वर्गणा के पुद्गल द्रव्य कर्म कहलाते है, और राग-द्वेष आदि जीव के कषाय–भाव भाव कर्म कहलाते है। इन दोनो मे कार्य–कारण भाव है। द्रव्य कर्म जब उदय मे आते है तो उनके निमित्त से राग-द्वेष आदि भाव कर्म उत्पन्न होते है और जब भाव कर्म उत्पन्न होते है तो नय कार्मण-वर्गणा के पुद्गल (द्रव्य-कर्म) आत्मा के साथ बंध जाते है। अविच्छिन्न रूप से यह प्रवाह चलता आ रहा है।

(२)

द्रव्य कर्मो से भाव कर्मो की उत्पत्ति होती है और भाव कर्मो से द्रव्य कर्म बँधते है। जैसे मुर्गी से अडा होता है और अडा से मुर्गी होती है, अथवा बीज से वृक्ष और वृक्ष से बीज उत्पन्न है, उसी प्रकार द्रव्य कर्म और भाव कर्म मे भी परस्पर कार्य–कारण भाव है।

(३)

समान साधन होने पर भी किसी को सफलता और किसी को असफलता मिलती है, कोई लाभ और कोई हानि

उठाता हैं, इन सब का कारण क्या है ? बाहर से तो सब एक-से दिखाई देते है फिर भी कार्य मे भिन्नता है तो कोई अदृश्य कारण होना चाहिये। वह अदृश्य कारण पूर्वोपार्जित कर्म ही है। आत्मा पुनर्जन्म न धारण करता हो तो पूर्वोपार्जित कर्म कैसे फल दे सकते है ?

(४)

बीमार कहता है अमुक औषध का सेवन करने से ज्वर चला गया किन्तु औषध ने भीतर जाकर किस प्रकार से ज्वर से लड़ाई की और क्या काम किया यह बात दुनियाँ को मालूम नही होती। फिर भी वह यह काम करती ही है। इसी प्रकार मनुष्य या अन्य कोई भी प्राणी जब पाप कर्म करता है तो यह नही मालूम होता कि पाप कर्म किस प्रकार आत्मा के स्वाभाविक गुणो को आच्छादित करते है ? वह यह भी नही जान पाता कि कब कितने कर्मो का बंध हो गया है, परन्तु कर्म औषध की भाँति धीरे-धीरे आप कार्य करते हैं। तुम चाहे दिन भर के अपने विचारो का पता न लगा सको मगर कर्मो को सब पता है। तुम जानो या न जानो कर्म तो लेखा लेगे और राई-राई का लेखा लेगे।

(५)

कई लोग कहते है-परलोक ढकोसला है। हम परलोक नही मानते। मै ऐसे लोगों से कहना चाहता हूँ कि तुम्हारे दिल मे जो यह विचार उत्पन्न हुआ है सो प्रबल पाप

का परिणाम है। तुम्हारा हित इसी मे है शीघ्र से शीघ्र इस मिथ्या विचार को दूर कर दो। क्योकि परलोक है और तुम्हारे न मानने से मिट नही सकता। पागल कहता है- सरकार किस चिडिया का नाम है हम नही जानते। मगर जब वह उत्पात मचाता है तो पागलखाने मे बन्द कर दिया जाता है, और कोडो की मार मार कर उसकी अक्ल दुरस्त की जाती है। जब उसकी अक्ल ठिकाने आती है तो वह मान लेता है कि सरकार है। यही बात तुम्हारे सम्बन्ध मे होगी

(६)

कर्म यद्यपि जड है तथापि चेतना का ससर्ग पाकर के उनमे फल देने की शक्ति उत्पन्न हो जाती है। जैसे अफीम मे मस्ती पैदा कर देने की शक्ति है शराब मे पागल बना देनेकी शक्ति है दूध मे पुष्टि की शक्ति है, वैसे ही कर्मो मे शुभ-अशुभ फल देने की शक्ति है।

(७)

जैसे नदी के प्रवाह मे कोई भी जल बिन्दु एक जगह स्थिर नही रहता, तथापि प्रवाह स्थिर है इसी प्रकार कर्मो का प्रवाह अनादि है। पुराने कर्म स्थिति का परिपाक होने पर अपना अनुभव-फल देकर अलग हो जाते है और नये कर्म बँधते रहते है। अतएव कर्मो की परम्परा अविच्छिन्न रूप से

चल रही है। कोई भी एक कर्म अनादि काल से नही है, सिर्फ कर्म प्रवाह अनादिकालीन है।

(८)

जैसे कोई व्यक्ति किसी से सौ रुपये उधार ले जाता हैं और पचास चुका कर फिर डेढ सौ ले जाता है। फिर कुछ देता है और फिर कुछ ले जाता है। इस प्रकार पुराना ऋण चुकाता चलता है और नया ले आता है और अपना खाता चालू रखता है इसी तरह जीव नए कर्म उपार्जन करता जाता है और पुराने भोगता जाता है।

(९)

भाइयो ! पुण्य और पाप की शक्तियाँ संसार मे बडी जबर्दस्त शक्तियाँ है। मकान बदल सकते हो, वस्त्र बदल सकते हो, आभूषण भी चाहो तो बदल सकते हो, किन्तु पुण्य और पाप को नही बदल सकते। उनके फल अनिवार्य और अमिट है।

(१०)

पूर्व जन्म के संस्कार अवश्य ही आत्मा में संचित रहते है और और वर्तमान जीवन बहुत कुछ उन्ही संस्कारों से प्रभावित एवं संचालित होता है।

(११)

फोनोग्राफ बाजे की चूड़ी में राग भरा हुआ है। किन्तु वह यो अनायास नहीं निकलती। बाजे में चाबी भरी

जाती है, सुई लगाई जाती है ! तब उसमे से वैसी ही आवाज निकलती है जसे गाने वाले ने गाई थी। चूड़ीमे वह आवाज जमा न होती तो सुई लगाने पर भी वहकै से निकलती। इसी प्रकार अपने भीतर भी पहले जन्म की और उससे भी पहले जन्म की अनेक घटनाओ के सस्कार जमा है। जैसे-ज‍ निमित्त मिलते है उसी प्रकार उनका स्मरण आता है।

(१२)

जैसे बीज और वृक्ष की परम्परा अनादिकाल से चली आ रही है, उसी प्रकार द्रव्य कर्म और भाव की परम्परा भी अनादिकाल से चली आ रही है। अगर किसी बीज को जला दिया जाय तो अनादि काल से चली आने वाली परम्परा खतम हो जाती है। इसी प्रकार कर्मो की परम्परा को भी तपस्या आदि की आग मे भस्म किया जा सकता है।

(१३)

जैसे रोटी का एक कौर खाया जाता है तो वह पेट मे जाकर रस, रक्त: मास, अस्थि, मज़्जा, बीर्य आदि के रूप मे परिणत होता है, उसी प्रकार आप जो हिसा करते है, झूठ बोलते है, चोरी करते है, दूसरो को अहित सोचते है, परस्त्री की तरफ बुरी नीयत से ताकते है, क्रोध, मान, माया लोभ करते है, तो इन सब से सात या आठ कर्मो का बध तो अवश्य ही होता है, ठीक उसी प्रकार जैसे आपकी समझ मे न आने

पर भी भोजन से रस, रक्त मांस बनते है । किसी के न समझने के कारण कर्मों का बंध रुक नही सकता ।

(१४)

जैसे किसी-किसी दवा का प्रभाव तीन वर्ष तक रहता है, अमुक शराव का नशा अमुक समय तक रहता है, इसी प्रकार कर्मो का प्रभाव भी भिन्न-भिन्न समय तक रहता है ।

(१५)

जीव अपने किये कर्मो के फलस्वरूप ही नाना प्रकार की दु:खमय योनियो मे भटका है और भटकता है । यो किसी राजा, यहाँ तक कि इन्द्र की भी शक्ति नही कि वह किसी को दुर्गति मे भेज सके । न कोई किसी को सुगति दे सकता है ; और न दुर्गति दे सकता है । अपने-अपने कर्म ही जीवों को सुगति-दुर्गति के पात्र बनाते है ।

(१६)

भाइयो ! तुम्हें परलोक की यात्रा करनी है आप जहां जाना चाहे वही जा सकते है । इसके लिए कोई रोकटोक नही है । मगर तीसरे दर्जे का टिकिट लेकर अगर दूसरे या पहले दर्जे मे बैठना चाहेगे तो नही बैठ सकेंगे । रेल्वे की यात्रा में कदाचित् पोल चल जाती है, मगर परलोक की यात्रा में पोल नहीं चल सकती । वहाँ तो जिस दर्जे का टिकिट खरीदेंगे उसी दर्जे में जाना ही पडेगा । अतएव अगर आपकी इच्छा प्रथम

या द्वितीय दर्जे मे जाने की हो तो आपको पहले ही ध्यान देना चाहिये। पहले ही उसका मूल्य चुकाना चाहिए। वह मूल्य क्या है ? रुपयो और पैसो मे वह मूल्य नही चुकाया जाता। वह दान, त्याग, तप, व्रत, सयम, नियम आदि के रूप मे चुकाया जाता है। निश्चित समझो, तनिक भी सदेह मत रक्खो कि जैसा करोगे वैसा भरोगे।

(१७)

कर्मो के आगे बडे-बड़े बलवान् भी दुर्बल बन जाते है उनके आगे किसी की नही [चलती। कर्म क्षण भर मे राजा को रक और रक को राजा बना देते है। वास्तव मे कर्मो की गति बडी विचित्र है ! इन कर्मो ने महान् से महान् पुरुषो के साथ भी रियायत नही की। रामचन्द्र जैसे मर्यादा पुरुष को सताया, भगवान् ऋषभ देव से भी बदला लिया और महावीर स्वामी को भी कष्ट पहुचाया। जब ऐसे लोकोत्तर महापुरुप भी क्रूरता से नही बच सकते तो साधारण मनुष्य की तो बात ही क्या है ?

(१८)

किसी भी तीर्थंकर, अवतार, पैगम्बर की ताकत नहीं कि वह किये हुए कर्मो का फल न भोगे। जो मिर्च खायेगा उसके मुँह मे जलन हुए बिना नही रहेगी। कोई शराब पी ले और चाहे कि नशा न आवे, यह कभी हो सकता है ? भाई इस विषय मे किसी की भी नही चलती है। कोई कहे कि यह

वडे आदमी है इन्हे गुनाह नहीं लगेगे, परन्तु गुनाह उसको तो क्या, उसके बाप को भी नही छोड़ने वाले है। जहर अपना काम करेगा और अमृत अपना काम करेगा । चाहे भेरुजी हो या बालाजी हो पीर हो या और कोई हो, किसी की भी ताकत नही कि गुनाह करके कह सके कि मैं उसका फल नही भोगुंगा। कर्मो के आगे न शनिजी की चलती है, न सूरजजी की चलती है।

(१६)

कोई असाधारण व्यक्ति हो या साधारण आदमी हो, भले ही तीर्थंकर ही क्यों न हो, यदि उसने पहले अशुभ कर्म उपार्जन किये है तो उन्हे भोगना ही पड़ता है। समरथ को नहि दोस गुसाई' की बात कर्मो के आगे नही चल सकती । अच्छे कर्म करोगे, अच्छा फल पाओगे. बुरे कर्म करोगे बुरा फल मिलेगा। कर्म करना तुम्हारी इच्छा पर निर्भर है। मगर फल भोगना इच्छा पर निर्भर नही है। शराब पीना या न पीना मनुष्य की मर्जी पर है, मगर जो पी लेगा, उसका मतवाला होना या न होना उसकी इच्छा पर निर्भर नहीं है। उसकी इच्छा न होने पर भी उसे मतवाला होना पड़ेगा। इसलिए मै बार-बार कहता हूँ कि खाली हाथ मत जाना ।

